सूचीपत्र

ज्ञानकंथा रहस्य	
ज्ञानकंथा रहस्य	१ पृष्ठ से ८ पृष्ठ तक
ज्ञानकंथा	
ज्ञान प्रकर्ण " " "	१ पृष्ठ से ६७ पृष्ठ तक
असुरनिर्णय प्रकर्ण " "	६८ पृ० से ८७ पृ० तक
सीताराम प्रकर्ण " "	८८ पृ० से १०० पृ० तक
गीता प्रकर्ण " "	१०१ पृ० से १६९ पृ० तक
अष्टावक्र प्रकर्ण " "	१७० पृ० से १८५ पृ० तक
जगत अत्यंताभाव मुक्त आनंद स्वरूप प्रकर्ण	१८६ पृ० से १९२ पृ० तक
कर्म निर्णय प्रकर्ण " "	१९३ पृ० से १९७ पृ० तक

ज्ञानप्रकर्ण " " "	१ पृष्ठ से ६७ पृष्ठ तक
असुरनिर्णयप्रकर्ण " "	६८ पृ० से ८७ पृ० तक
सीताराम प्रकर्ण " "	८८ पृ० से १०० पृ० तक
गीताप्रकर्ण " "	१०१ पृ० से १६९ पृ० तक
अष्टावक्र प्रकर्ण " "	१७० पृ० से १८५ पृ० तक
जगत अत्यंताभावमुक्त आनंद स्वरूप प्रकर्ण	१८६ पृ० से १९२ पृ० तक
कर्म निर्णय प्रकर्ण " "	१९३ पृ० से १९७ पृ० तक

श्री परमेश्वरो जयति

अथज्ञानकथा रहस्यप्रारंभः

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरं
हेतुनानेन कौंतेय जगद्धि परि वर्तते-इतिस्मृतेः
अनादि अनिर्वचनीय त्रिगुणात्मिका

माया। अनादिनाम उत्पत्ति रहितं अनिर्वचनीयं नाम किसी प्रकार कही न जाय त्रिगुणात्मिका नाम सत रज तम एहीहैं स्वरूप जिसका माया आत्म स्वरूप के अज्ञान का नाम है यह माया चिर काल से ब्रह्म के एक अंश में अध्यस्त पड़ी रही एक समय ब्रह्मसाक्षी माया की ओर दृष्टि करते भये क्या समान से माया को जानता भया तिस काल विषे सूर्य के प्रतिबिंब की नांई जैसे जल में प्रतिबिंब पड़ता है तैसेही ब्रह्मसाक्षी माया में प्रवेश करता भया क्या लोहे और अग्नि की नांई

स्फूर्ति सामान से माया में दत्त भई ...
तन्य की नांई होकर स्त्रीवत् ब्रह्म के सन्मुख खड़ी
होती भई क्या विशेषजानाजो मायाहै तब ब्रह्म
कहते भये तुम कौनहो तब मायाने कहा कि मैं
प्रकृति नाम स्त्री हूं क्याजानाजो मेरा स्वभाव और
शक्ति अध्यारोप करने की है चाहती हूं कि यदि
कोई सत्यवक्ता पुरुष होवे तब मैं उस इच्छा को
लीला दिखाऊं क्याजाना जो अध्यारोप का हेतु है
तब ईश्वर ब्रह्मभोक्ते पुरुष के स्वरूप को धार
करके प्रेरणा क्या आज्ञा करते भये कि लीलाको
हम देखते हैं क्याजाना जो अध्यारोप का प्रयोज
न जीव के भोग और मोक्षका है तब प्रकृति ने
कहा कि यदि मेरेको त्यागो नहीं तब लीला दिखा
वती हूं, क्या विचारा इस अध्यारोप का त्याग कैसे
होगा तब ब्रह्मने कहा ऐसा कभी नहीं भया है
जो इच्छा लीला को त्यागे नहीं सो मैं तुम्हारे को
ऐसा त्याग क्या नास करूंगा जो फिर कभीतुम्ह-
हारिचित उत्पत्ति नहीं होगी, क्याजाना जो साधन स-
म्पत्ति के पीछे ज्ञान द्वारा इसका नाश और जीव

क्या जाना जो अब तक माया से सत्ता स्फूर्ति क्या विशेष सत्ता नहीं हुई थी अब मैं आपको लीला दिखाती हूं आप समाधान होकर देखो, क्या जाना जो इस अध्यारोप का हृष्टा साक्षी मैं हूं, ब्रह्मके प्रतिबिंब करि युक्त माया को ईश्वर व अव्याकृत व बीज व कारण कहते हैं सो ईश्वर इच्छा कर ता भया कि एक से नाना हों तब आकाश से आदि ले पंच तन्मात्रा अपंचीकृत भूत होते भये आकाश के सात्विकांश से श्रवण इन्द्री की उत्पत्ति है, वायु के सात्विकांश से त्वचा तेजके सात्विकांश से चक्षु, सूक्ष्म जलके सात्विकांश से रसना पृथ्वी के सात्विकांश से नासिका पंचभूतके समष्टि सतो गुण अंशसे चारों अंतःकरण क्या मन बुद्धि चित्त अहंकार यहनव पदार्थ सतोगुण अंससे भये आ- काश के रजोगुण अंससे वाक् वायु के रजोगुण अंस से हाथ तेज के रजोगुण अंससे पाद जलके रजो गुण अंससे उपस्थि पृथ्वीसे गुदाइंद्री है ५ भूतों के समष्टि रजोगुण से पांच प्राण क्या प्राण अपान

व्यान उदान समान यह दस पदार्थ रजोगुण से हैं
इन उन्नीस तत्वों का सूक्ष्म शरीर होताभया सो
सूक्ष्म शरीर दो प्रकार का है एक समष्टी दूसरा व्य-
ष्टी, समष्टी ईश्वर का शरीर है व्यष्टी जीवों के
शरीर हैं जैसे कोई पुरुष बड़े जलाशयसे नहर
खोदकर जल लेजाके अनेक खेतों में प्राप्त करता
है और सूर्य का प्रतिबिंब बड़े जलाशय में और
नहर में और खेतों में सर्व जलों में पड़ता है, महा
जलाशय समष्टी, और नदी खेतों का जल व्यष्टीहै
इस समष्टी व्यष्टी जल में जलों का जलाशय से किं-
चित् भेद नहीं, जलही है, और सूर्यके प्रतिबिंब
और सूर्य में किसी प्रकार भेद नहींहै तैसे ही अपंची
कृत सूक्ष्म महाभूत समष्टी तिसमें ब्रह्म का प्रति-
बिंब पड़ाहै तिसका नाम हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा है
अनेक सूक्ष्म शरीर व्यष्टी हैं तिन सबमें आत्माका
सूर्य के प्रतिबिंब अथवा घटाकाश महाकाश की नां
ई ब्रह्म का प्रवेश है तिसको व्यष्टी तैजस कहतेहैं
इस प्रकार तैजस व्यष्टी का हिरण्यगर्भ समष्टी से
भेद नहींहै और फिर ईश्वर आप इच्छा करके स-
मष्टी पंचसूक्ष्म भूतों के तमोगुण अंससे पंचीकृत

पंच महाभूत उत्पन्न करते भये सो श्रवण कर ॥
एक एक भूत के दो दो भाग करके दस भाग भये एक
एक भूतके अर्द्ध अर्द्ध भाग को लेकर चार चार भाग
करके अपने से इतर भूतों के अर्द्ध अर्द्ध के साथ मि-
लावते भये इस प्रकार एक एक भूत के पंच पंच
भाग होते भये इस प्रकार पंचीकृत पंच महाभूत
होतेभये इन पंच महाभूतों का नाम समष्टी स्थूल
है इसमें सूर्यके प्रतिबिंब की नांईं ब्रह्म का प्रवेश
है उसका नाम समष्टी विराट और इन पंचीकृत
पंच महाभूतों से अनेक चराचरके स्थूल शरीर होते
भये सो शरीर चार प्रकार का है एक अंडज सर्प प-
क्षी आदिकों के हैं दूसरे पिंडज मनुष्य पशु आदि
हैं तीसरे उद्भिज वनास्पती पर्वतादि हैं चौथे स्वे-
दज जूंक मसक आदि हैं अनेक स्थूल शरीरें का
नाम व्यष्टी स्थूल है व्यष्टीस्थूल शरीरों में ब्रह्म का
प्रवेश सूर्यके प्रतिबिंब की नांईं इसका नाम व्यष्टी
विश्वजीव है इस प्रकार जल जलाशय की नांईं स-
मष्टी व्यष्टी में भेद नहीं ॥ और त्रिगुणात्मिका माया
सो माया दो रूप होती भई एक शुद्ध सत्त्व प्रधान
माया उपादान कारन समष्टी द्वितीया मलिन सत्त्व

प्रधान कार्यरूप अविद्या व्यष्टी है माया समष्टी में ब्रह्म का प्रवेश सूर्य के प्रतिबिंब कीनांईं है तिसका ईश्वर निमित्त कारण समष्टी नाम है॥ और अविद्या का रजरूप व्यष्टी कारण शरीर है इसीमें ब्रह्म का प्रवेश घटाकाश महाकाश की नांईं है इसका नाम प्राज्ञजीव व्यष्टी है॥ इससर्व समष्टी व्यष्टी को जल जलाशय और बन वृक्षकी नांईं अभेद निश्चय करना यही परम पुरुषार्थ है सर्व समष्टी व्यष्टी कार्य कारण अधिष्ठान ब्रह्म में रज्जू के सर्पादिक कीनांईं अज्ञान से भ्रांति होती है ज्ञानसे तथा अपने स्वरूपके साक्षातकार से सर्व भ्रांति की निवृत्ति होकर ब्रह्मस्वरूप अधिष्ठानमें स्थिति होती है और विचार कर देखोतो जैसे सर्पादिक में रज्जू ही है। भूषण में सुवर्ण ही है। रूपे में सीपी ही है। तैसे सर्व समष्टी व्यष्टी प्रपंचमें एक सतचित आनंद आत्मा ही है जो पुरुष अधिकारी गुरू शास्त्र द्वारा आपको और सर्व जगतको ब्रह्म रूप साक्षातकार ता है सो निरजनन मुक्त अथा जन्म मरण से रहित ब्रह्म रूप होताहै आगे निर्णय कोशों का है॰ अन्नमय-प्राणमय- मनोमय-विज्ञानमय- आनन्दमय ये ५कोश

हैं- जो अन्नके रससे उत्पन्न होताहै अन्नके रससे
वृद्ध होता है अन्न रूप पृथ्वी में लय होता है सो
स्थूल शरीर अन्नमय कोशहै ५प्राण ५कर्मेन्द्री १०
मिलके प्राणमय कोश है इसकी क्रिया शक्ती है
जो क्रिया शरीर में है सो क्रिया प्राणमय कोशकी
है प्राणमय अन्नमय के भीतरहै १मन ५ज्ञानइंद्री
मिलके मनोमय कोशहै इच्छा शक्ति और रागद्वेष
इसके धर्महैं-सो प्राणमय के भीतर है ५ज्ञानइंद्री
१बुद्धि मिलके विज्ञानमय कोश है इसकी ज्ञान श-
क्तिहै-मनोमयके भीतर है प्राणमय मनोमय वि-
ज्ञानमय इन ३कोशों का सूक्ष्म शरीर है आत्माके
अज्ञानको आनंदमय कोश और कारण शरीर कहते
हैं आनंदकी बाहुल्यता होने से आनंदमयहै तल-
वारके म्यान का नाम कोशहै अज्ञानकर आत्मा
तलवार की नांईं आच्छादित होने से कोशहै स्थूल
सूक्ष्म शरीरों का कारण होनेसे कारण शरीर है ज-
न्म मृत्यु क्रिया शक्ति इच्छा शक्ति ज्ञान शक्ति अज्ञा
न यह ५कोशों के धर्म आत्मा में नहींहै और सत
चित आनंद लक्षण आत्माके ५कोशों में नहींहैं इसी
से पंचकोश आत्मा नहींहै यह सर्व अव्यहारलगये

ब्धी आदिजीव ईश्वर के वाच्यमें है जैसे जलगता-श्रय का व्यवहार सूर्यके प्रतिबिंव में है सूर्यमें किञ्चित् नहींहै जैसे जलका आहरणादिव्यवहार घटके वाच्यमें है लक्ष्य मृत्तिका में नहीं है तैसेही लक्ष्यरूप आत्मामें किंचित् समस्त प्रपंचकी गंध नहींहै जैसे भूषणाकट-मुकुटादिका व्यवहार वाच्यमें है लक्ष्यरूप सुवर्णमें नहीं है— अब इन्द्रियों के देवता चतुर्दश दिखाव ते हैं- श्रवण इन्द्री का दिग देवता - त्वचा का वायु- चक्षु का सूर्य देवता - रसना का वरुण दे-वता - नासिका का पृथ्वी देवता - वाक्‌का अ-ग्नि - हाथ का इन्द्र - पादका विष्णु - गुदा का मृत्यु देवता- उपस्थ का ब्रह्मा- मनकाचं-द्र- बुद्धि का बृहस्पति - अहंकार का रुद्र - चित्त का क्षेत्रज्ञ - जो देवता जो इन्द्री जो विषय सर्व माया और प्रतिबिंब रूपहै - माया का औ-र प्रतिबिंब का आत्मा में किंचित् सम्बन्ध नहीं है-

चौपाई

सियाराममय सबजग जानी। भ्रमभेद किंचित्
नहिं मानी॥ स्मृति श्रुति का सार बिचारो
भ्रम छोड़ हृदय दृढ़धारो॥

आत्मा के लक्षण सतचित आनंदका अर्थ लि-
खते हैं- सत उसको कहते हैं जो तीनकाल नाश
से रहित होवे और चित उसको कहते हैं जो
सर्व का प्रकाशक और आप स्वयंप्रकाश होवे
और द्रष्टा होवे- आनन्द उसको कहते हैं जो
निरुपाधिक वा निरतिशय सुख रूप वा परम
प्रेम का आसपद होवे- सो सतचित आनंद ल-
क्षण आत्मा के मेरे में घटते हैं मैं आत्मा हूं ऐसे
निश्चय करने से मुक्ति होती है ॥

इति स्वामी गंगागिरि विरचितं ज्ञानकथा
रहस्य संपूर्ण-

श्रीगणेशायनमः ॥
हरिः ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः॥

दोहा

गीता भारत को मता आचारज की युक्ति
अष्टावक्र वशिष्ठमुनि नहीं आपनी उक्ति
शिव गीता अरु श्रुती को दीन्हे बहु परमान
ज्ञान कंथ की इस्थिती इतने में व्याख्यान

अथ ज्ञान प्रकरण

दोहा

नमो नमो श्री देवि, जो ब्रह्म विद्या व्याख्यान
सुगम जासु परसाद से, नाश होत अज्ञान
नमो नमो श्री देवि, जो ब्रह्म विद्या व्याख्यान
केन उपनिषत् में कही, उमा हैमवती जान
यथा तथा उपदेश से, मुक्त होय बुध बुद्ध
सर्व आयु जिज्ञास कर. जायन रक दुर्बुद्ध

श्लोक – अष्टावक्र

यथा तथोपदेशेन कृतार्थः सत्व बुद्धिमान्॥
आजीव मपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति २

टीका

जैसे तैसे किसी प्रकार उपदेश करके कृतार्थ मुक्त
होता है सत्व बुद्धि वाला मुमुक्षु, इससे परे असत
त बुद्धि वाला अज्ञानी जो है जन्म से मरने पर्यंत
भी जिज्ञासा करता हुआ अनन्य जिज्ञासा के विषय
संसार भाव को प्राप्त होता है बारंबार जन्मता मरता
है मुक्त नहीं होता इन्द्र व विरोचन की तरह जैसे
इन्द्र व विरोचनने तेतीस वर्ष तक ब्रह्मा का सत-
संग किया इन्द्र का अन्तः करण शुद्ध था मुक्त हु-
आ विरोचन का अन्तःकरण शुद्ध नहीं था संसार
भाव को प्राप्त हुआ यह प्रसंग छान्दोग्य उपनिषत
में लिखा है ॥

सिद्धान्त यह कि जिसका अन्तः करण शुद्ध है
मुक्त होता है जिसका अन्तः करण शुद्ध नहीं है
किसी प्रकार मुक्त नहीं होता ॥

शिष्यप्रश्न

दोहा

साधन बुद्धी शुद्धके भगवन कहु निरधार
शुद्धि बुद्धि के लक्षण कहु करिके बिस्तार

टीका

हे भगवन् साधन और लक्षण शुद्ध बुद्धी का कृपा करके कहिये ॥

गुरुउत्तर

दोहा

श्रद्धा करके ज्ञानमें कर्म परायण जो ॥
शुद्ध बुद्धि सो होत है भगवत कहते सो ॥

श्लोक गीता

यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणः २

टीका

यज्ञ-दान-तप-मुमुक्षु को पवित्र करता है शुद्ध बुद्धि करता है एक महा यज्ञ है दूसरा देव-ता का यजन करना पूजा करना यज्ञ है तीसरा जप निष्काम को यज्ञ लिखा है एक सोना आदि

ब्राह्मणों को यथाशक्ति देना दान है दूसरा अभय
दान देना दान है किसी को अपने से डर नहो
आप किसी को या किसी जीव पर अन्याय न करे
यदि कोई दूसरा अन्याय करता हो तो उस को बचा
देवे उसको भी दान कहते हैं- एक कृच्छ्र चान्द्रा
यण आदि व्रत करना तप है दूसरा अपना वर्णाश्र
म का धर्म जैसा शास्त्र में लिखा है यथावत् कर
ना तप है ॥

सिद्धान्त यह है कि जो कोई ज्ञान में श्रद्धा करके
निष्काम कर्म या यज्ञ दान तप करता है शुद्धबुद्धि
पुरुष वह होता है ॥

दोहा

शुद्ध बुद्धि को ज्ञान बिन और कर्म नहि कोइ
ए श्री भगवत कहत हैं निश्चय जानो सोइ

श्लोक-भगवतगीता

आरुरुक्षो र्मुने र्योगं कर्म कारण मुच्यते
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारण मुच्यते

टीका

योगारूढ़ होने की इच्छावाले मुनि को कर्म का

योगहै वेद कहता है और योगारूढ हुए त-
स्येव तिस ज्ञानी को न और को, कर्मों का त्याग
ज्ञान निष्ठा का सम्पादन करना योगहै- वेद
कहता है- योगारूढ उसको कहते हैं जो
वैराग्य को प्राप्त होकर ज्ञान को प्राप्त हुआ
होय ॥

सिद्धान्त यह कि जब तक ज्ञानी न होवे तब
तक कर्म करना चाहिये जब ज्ञान होवे तब
कर्म को छोड़कर ज्ञान में निष्ठा करनी चाहि-
ये प्रयोजन यह कि सिवाय ज्ञानके और कोई
कर्म करना उसे योग्य नहीं है ॥

दोहा

लक्षण बुद्धी शुद्ध के सकल कहे नहि जाय
कछुक कहत संक्षेप से जानो मन चित लाय
भोग मोक्ष की कामना मन से होवे त्याग
साधन भोग अरु मोक्ष के तिनसे हो वैराग

श्लोक - अष्टावक्र

बहुनात्र किमुक्तेन ज्ञाततत्त्व महाशयः
भोगमोक्ष निराकांक्षी सदा सर्वत्र नीरसः

टीका

ज्ञानी के लक्षण विषय बहुत कहने से क्या है थोड़े में कहते हैं कि जो ज्ञानी स्वरूप को जानता है जिसका अन्तःकरण ब्रह्म विषयकहै वहभोग मोक्षके कांक्षा से रहित होता है सब काल में भोग मोक्षके सब साधन विषय प्रीति से रहित होता है ॥

सिद्धान्त यह कि जिस किसी ने स्वरूप को जाना जो साधन भोग मोक्ष के हैं उसकी तरफ़ किसी प्रकार उसका मन नहीं जाता और किसी साधनों में प्रीति नहीं करता सब कामना छूट जाती है ॥

दोहा

शुद्ध बुद्धि तेहि जानियो होविराग जिस चित
ब्रह्मलोकको आदिलै जानै सर्व अनित्य

श्लोक-आचार्य

तपो यज्ञदानादि भिः शुद्ध बुद्धि विरक्तो नृपादौ पदे तुच्छ बुद्ध्या ॥ परित्यज्य सर्वं यदाप्नोति तत्वं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि

टीका

तप-यज्ञ-दान और सगुन ब्रह्म की उपासना करके शुद्ध बुद्धी जो है वह चक्रवर्ती राजा के भोग से लेकर ब्रह्म लोक के भोग पर्यन्त से विरक्त है और वह वंध्या के पुत्र और खरगोश के सींग की तरह तुच्छ जानकर सब लोकों को त्याग करके जिस स्वरूप को प्राप्त होता है वह स्वरूप उत्कृष्ट, आनंद स्वरूप, नाश से रहित है सो आनन्द स्वरूप निश्चय करके मैं हूं ॥

श्लोक-गीता

आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन

टीका

इस लोक से ब्रह्म लोक पर्यन्त जितने लोक हैं हे अर्जुन आनेवाले जानेवाले हैं-फिर फिर उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं ॥

सिद्धान्त यह कि शुद्ध बुद्धि जो कोई है उस को इस लोक और ब्रह्म लोक दोनों लोकों के भोगों की इच्छा नहीं है ॥

दोहा

जिसको आत्मज्ञान है अधिक बोलता नाहिं
वाक इन्द्री को रोककर रहै विचारै माहिं
जिसको आत्मज्ञान है जड़ बुद्धी है सोय
सर्व बुद्धि को रोककर ब्रह्म नेष्ठी होय
जिसको आत्मज्ञान है सर्व कर्म को छोड़
आलसी होकर सो रहै अहं ब्रह्म करि ओढ़

श्लोक-अष्टावक्र

व्यवहारे खिद्यते यस्तु निमेषोन्मेषयोरपि
तस्यालस्य धुरीणस्य सुखं नान्यस्य कस्यचित्

टीका

फिर जिस पुरुष को नेत्र के बंद करने और खोलने इन दोनों व्यवहार के विषय भी निश्चय करि के खेद होता है और पुरुष अग्रीय युक्त को सुख नहीं होता ॥ अग्रीय उसको कहते हैं कि किसी चीज़ पर हठ करे कि जो हम यह काम न करेंगे तो हर्ज होगा उसको अवश्य करना चाहिये ॥

सिद्धान्त यह कि जिस मनुष्य को आंख बंद करने और खोलने में भी दुःख होता है - जिसे

इतना व्यवहार भी अंगीकार नहीं है तिसी को सुख
है वह मनुष्य अधिक बोलता नहीं उसकी जड़
बुद्धि होजाती है और सब कर्मों को छोड़देता है
केवल मैं ब्रह्म हूं इसी विचार और निष्ठा में रहता
है और और कुछ नहीं करता ॥

दोहा

आत्मज्ञानसे होतहै जड़ अरु आलसचित
ताते आत्मज्ञान को भोगी त्यागत नित

श्लोक-अष्टावक्र

वाग्मिप्राज्ञं महोद्योगं जनंमूकं जडालसं
करोतितत्व बोधोऽयमलस्त्यक्तो बुभुक्षुभिः

टीका

यह तत्व बोध बहुत बोलनेवाले पुरुष को गूंगा
और बहुत व्यवहार जाननेवाले पुरुष कोजो बहुत
चतुराई करताहै जड़ और बहुत उद्यम करनेवाले
पुरुषकोजो कर्म करनेमें बड़ी मेहनत व उपाय
करताहै तिसको आलसी कर देताहै इसीकारण
से भोगी आत्मज्ञान को त्याग करता है ॥

सिद्धान्त यहकि आत्मज्ञान से बहुतव्यवहार

छूट जाता है इसी कारण से जिसको भोग की इच्छा है आत्मज्ञानको छोड़ देता है ॥

दोहा

आत्मज्ञानको छोड़कर भोगों मे लपटा
सो निश्चय कर असुर है कहै वेदप्रगटा

श्लोक - कारिका - ईशावास्य उपनिषद्

आत्मज्ञानमुपेक्ष्यार्थं देवाये भोग लंपटाः
असुरा एवते ज्ञेया आत्म धर्मबहिः कृताः

टीका

जो देवते भोग लंपट - भोगों की इच्छा में लिपटे हुए आत्मज्ञान की उपेक्षा करके आत्मज्ञान की तरफ़ चित्त न देकर भोगों के निमित्त यत्न करते हैं भोगों के मिलने के लिये और उसके भोग में मन लगाये रहते हैं ते देवते निश्चय करके असुर जानने योग्य हैं आत्म धर्मसे वे देवते बाहर कियेहुए हैं

सिद्धान्त यह कि जो कोई आत्मज्ञान की तरफ़ मन चित्त नहीं लगाता केवल भोग की तृष्णा में पड़ा रहता है सो पुरुष आत्म धर्मसे बाहर निकाला हुआ असुर है ॥

ॐ उपेक्षाकी व्याख्या

करुणा - मित्रता - मुदिता - उपेक्षा - चारचीज़हैं करुणा उसको कहतेहैं किसी पर दया करनी - मित्रता उसे कहते हैं कि किसीके साथ मिताई करना मुदिता उसको कहते हैं कि जो किसीका ऐश्वर्य देख कर खुश होना - उपेक्षा उसको कहतेहैं जो दुष्ट की तरफ़ ख्याल न करना ॥

श्रुति - ईसावास उपनिषद्

असुर्य्यानामतेलोका अंधेनतमसावृत्ता
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छंति येकेचात्महनोजनाः

टीका

असु करके नामहै जिसका - असु प्राण को कहते हैं प्राणसे प्रयोजन इन्द्रिय से है इन्द्रियसे प्रयोजन इन्द्रियके देवताओं से है - जो देवते भोग लंपट जिनका असुर नाम है तिनका लोक अन्धतम करके चारों ओर से घिरा हुआ है तिस लोक को मर करके फिर प्राप्त होतेहैं सो कौन हैं आत्महत्यारे पुरुषहैं आत्मा जो पूर्ण है तिसको न जानकर अपने को शरीर मानकरके जन्मता मरता अपने को जानते हैं यही आत्माका हनन करता है ॥

सिद्धान्त यह कि जो कोई भोगों में लिपटा रहता है और अपने को शरीर मानकर जन्मता मरता जानता है सो बारम्बार संसार को प्राप्त होता है मुक्त नहीं होता ॥

श्लोक - महाभारत

योऽन्यथा सन्त मात्मान मन्यथा प्रतिपद्यते
तेन किंन कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा

टीका

योन्यथा सन्त मात्मानं - जो अज्ञानी पुरुष सत स्वरूप आत्मा को - अन्यथा प्रतिपद्यते - और तरह पर जानता है - है तो आप आत्मा और जानता है कि मैं शरीर हूं अथवा ब्राह्मण क्षत्रिय हूं यह हमारा बाप है मैं इसका लड़का हूं - नतेन किंकृतं पापं - उस पुरुषने कौन पाप नहीं किया - चौरेणात्मा पहारिणा - वह चोर आत्मा का हनन करनेवाला है।

सिद्धान्त यह कि जिस अज्ञानी पुरुषने सतस्वरूप आत्मा को न जानकर अपने को शरीर आदिक जो असत हैं वह मानता है या यह कि मैं ब्राह्मण वा क्षत्रिय आदिक हूं और अमुक मेरा बाप है मैं अमुक का लड़का हूं ऐसा जानता है उस चोर

आत्मा के हनन करनेवाले ने कौन पाप नहीं किया प्रयोजन यह कि सब पापकर चुका ॥

इति अधिकारी लक्षणं

शिष्य-प्रश्न

दोहा

साधन अरु लक्षणसुने अधिकारी के तात
हेतु आदि ले बोधके कहु भगवन विख्यात

टीका

हे भगवन् साधन और लक्षण ज्ञानी के सुना अब ज्ञान का हेतु और स्वरूप और कार्य और अवधि कृपा करके कहिये ॥

गुरु उत्तर

दोहा

श्रवण आदि ले तीनको हेतु ज्ञानका जान
और सर्व आगे कहत निश्चै कर पहिचान
साक्षीजानै सर्वको सो हम शुद्ध स्वरूप
इस निश्चैकी गाढ़ता जानो ज्ञान स्वरूप

टीका

सर्व अनात्मा हम नहीं ऐसा निश्चै जो
सो कारज है ज्ञान का निश्चै जानो सो
जैसे निश्चै देह में सबको आतम भाव
तैसे तिसको छोड़कर अहं ब्रह्म सुभाव
इस स्वभाव की गाढ़ता संशय रहित जो हो
सोई अवधी ज्ञान की निश्चै जानो सो।

वेदान्त संज्ञा

ज्ञानस्य हेतुः श्रवणादित्रयं। अहं देहेंद्रिया-
द्यतिरिक्तः साक्षी। प्रतीयमान प्रपंचोप्यस-
त्यः। इति दृढ़ निश्चयः ज्ञानस्य स्वरूपं। अत्र
निश्चयो दार्ढ्यम् नाम किं संशयादि राहित्यं।
अनात्मास्वात्मत्व बुद्ध्या भावो। ज्ञानस्य कार्य-
मिति विवेकः। अज्ञान काले देहा दावात्म विष-
यिणी दृढ़ा बुद्धिर्यथा तथा तद्ध प्रतीति पूर्वकं
अहं ब्रह्म इति दृढ़ निश्चयः। बोधस्यावधिः
इति बोधस्य हेत्वादिकं॥

टीका

श्रवण-मनन-निदिध्यासन-यह ज्ञान का हेतु
है-श्रवण उसको कहते हैं कि गुरु को प्रसन्न

करके गुरु से वेदान्त का अर्थ सुनकर उसपर निश्चय करे- मनन यहहै कि वेदान्त की युक्ति करके दृष्टान्त करके उस अर्थको वारंवार विचार करे- निदिध्यासन यहहै कि शान्ति आदि चार साधन से युक्तहोकर विजातीय प्रत्ययका तिरस्कार करके सजातीय प्रत्यय का प्रवाह मन में करे कि मैं ब्रह्मस्वरूप हूं दिन रात यही प्रत्यय करता रहे ॥ साधन चतुष्टय- चार साधन यह हैं- विवेक- वैराग्य- षट्सम्पत्ति- मुमुक्षुत्त्व ॥ आत्मा- अनात्मा को जुदाजुदा जानना इसका नाम विवेक है- सर्व इच्छा का त्याग करना इसका नाम वैराग्य है- षट् सम्पत्ति- छः साधन यहहैं- शम- दम- उपरति- तितिक्षा- समाधान- श्रद्धा- मन आदि का रोकना शम है- बाहरी चक्षु आदिका रोकना दम है- विषयों से उपराम- हटीहुई इन्द्रियों को फेर वारंवार उपराम करना इसका नाम उपरति है- दूसरे यहकि नित्य निमित्त आदि कर्मको शास्त्र की विधिपूर्वक त्याग करना- संन्यास करना यह दूसरा अर्थ उपरति का है- शीत- उष्ण- सुख दुख का सहना इसका नाम तितिक्षा है- सगुनब्रह्म

नाम समाधानहै ...
विश्वास करना - इसका नाम श्रद्धा है - मुक्ति हमा
री होय ऐसी इच्छा करके साधनों में प्रवृत्त होना
और दूसरी इच्छा कभी न करना इसका नाम मुमु
क्षुत्व है ॥ मैं देह इन्द्रिय अन्तःकरण से भिन्न
साक्षी हूं सब का जानने वाला हूं - प्रपंच - संसार
जो प्रतीत होरहा है वह निश्चय करके असत है
इस प्रकार दृढ़ निश्चय का होना ज्ञानका स्वरूप है
दृढ़ निश्चय अर्थात् संशय आदि से रहित होना ॥
संशय - असम्भावना अर्थात् विपरीत भावना का
न होना - गुरु और वेद कहते हैं कि ब्रह्म पूर्ण है सो
तुमहो सो मैं ब्रह्म हूं या नहीं इस संदेह को संशय
कहते हैं - असम्भावना उसको कहते हैं कि ब्रह्म
पूर्ण और अकर्त्ता है मुझको वेद में कर्म करना लि
खा है सो मैं ब्रह्म कैसे होसक्ता हूं - विपरीत भावना
उसको कहते हैं कि वेद में जीव को मेरे को करम
करना लिखा है सो मैं किसी तरह ब्रह्म नहीं हूं सो
इन तीनों को त्याग करके मैं ब्रह्म हूं ऐसा निश्चय हो
ना ज्ञानका स्वरूप है - अनात्मा के विषय आत्मत्व

शरीर इन्द्रिय आदिको अनात्मा - नाशवान है ति-
स को आत्मा जो नाशते रहित अपना या मैं हूं
वह निश्चय कर रहाहै ऐसी बुद्धि का न होना यह
ज्ञानका कार्य्य है यही विवेक है अज्ञानकाल के
विषय देह इन्द्रिय आदिकों में आत्म निश्चय करने
वाली दृढ़ बुद्धि जिस तरह है तिसी तरह अप्रतीति
पूर्वक कि मैं शरीर हूं उस निश्चय को प्रथम छोड़के
पीछे मैं ब्रह्म हूं ऐसा दृढ़ निश्चय जो ऊपर कहा
गयाहै होना ज्ञानकी अवधि है ॥

सिद्धान्त यहहै कि श्रवण आदि तीन ज्ञान का
हेतुहै औरजो सब का साक्षी है सो हमहैं ऐसा
निश्चय होना ज्ञानका स्वरूप है और जो अनात्मा
है सो हम नहीं हैं ऐसा निश्चय होना ज्ञान का कार्य्य
है:गुरु को प्रसन्न करके गुरु द्वारा वेदान्त के अर्थ को
सीखकर निश्चय करना श्रवण है वेदान्त की यु-
क्तियों करके दृष्टान्त के साथ बारंबार विचारना
मनन है शान्ति आदि चतुष्टय साधन से युक्त हो
कर विजातीय प्रत्यय का तिरस्कार करके सजातीय
प्रत्ययका प्रवाह मन में करना निदिध्यासनहै ॥

शिष्य प्रश्न

दो॰ दुखका हेतू कर्म जे तिनका कहो स्वरूप
कर्म नाश हो जेहि विधी सो विधि कथिय निरूप

टीका— हे भगवन् जो दुख का हेतु कर्म है तिस का स्वरूप और किस तरह पर उसका नाश हो कृपा करके कहिये ॥

गुरु उत्तर

दो॰ कोटि जन्मके कर्म जे संचित तिनका नाम
नष्ट होत ते ज्ञान से कर्मों से नहिं काम

श्लोक शिवगीता— कूटस्थानीह कर्माणि कोटिजन्मार्जितान्यपि । ज्ञानेनैवतु नश्यंति नतु कर्मायुतैरपि ॥

टीका अनेक जन्मों के जमा किये हुए दृढ़ कर्मों के कूट की तरह स्थित बहुत भारी ढेर ज्ञान से नाश होते हैं निश्चय करके हजारों वर्ष भी कर्म करने से नष्ट नहीं होते इनका नाम संचित कर्म है

दो॰ कर्म शुभाशुभ ज्ञानिके देह आदि से हों
कर्मलेप कछु ताहि नहि शिवजी कहते सो

शिवगीता

श्लो॰ ज्ञानादूर्ध्वं तु यत्किंचित् पुण्यं वा पापमेव वा

क्रियते बहु वाप्यल्पं नतेनायं विलिप्यते ॥

टीका ज्ञान होने से पीछे जो कुछ पुण्य वा पाप करता है बहुत अथवा थोड़ा तिस पुण्य वा पाप करके यह ज्ञानी लिप्त नहीं होता अर्थात् पुण्य पाप का भागी नहीं होता – सिद्धान्त यह कि जिस को ज्ञान होता है सब कर्म धर्म इन्द्रियों के होते रहते हैं ज्ञानी को पाप पुण्य नहीं होता क्यों कि वह ज्ञानी उसका कुछ ख्याल नहीं करता कि क्या होता है उसको क्रियमाण कर्म कहते हैं ॥

दो॰ कर्म संचित से निकस कर देह बनावें जो
प्रारब्ध तिसको कहत हैं भोगे जावें सो
तासु नाश नहिं ज्ञान से शंभू कहै पुकार
कर्म नाश इस विधभए छूटै दुख संसार

शिवगीता

श्लो॰ शरीरारंभकं यत्तु प्रारब्धं कर्म जन्मतं त-द्भोगेनैव नष्टं स्यान्नतु ज्ञानेन नश्यति ॥ सर्वे कर्म क्षयवशात्साक्षात्कारोपि चात्मनः ॥

टीका शरीर के रचने वाले जो कर्म हैं तिन को प्रारब्ध कहते हैं उन कर्मों का नाश भोग ही करने से होता है ज्ञान करके नाश नहीं होता –

सिद्धान्त यहकि जिन कर्मों के फल करके श-
रीर बनाया गया, शुभ अशुभ जोकुछ भोग उस
शरीर के निमित्त रक्खागया वह हर हाल में भोग-
ना पड़ताहै किसी तरह मिट नहीं सकता सब कर्मों
के नष्ट होनेके पीछे आत्मा का साक्षात्कार होताहै

शिष्य प्रश्न

अध्यारोप अपवादकर निश्चै होत स्वरूप
तिसमें अध्यारोपका प्रथमे कहिये रूप

वेदान्तसंज्ञा

अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंच्यते

टीका अध्यारोप और अपवाद इन दोनों करके
निष्प्रपंच ब्रह्म को विस्तार करतेहैं सो दया करके
पहले स्वरूप अध्यारोप का कहिये ॥

गुरु उत्तर

ईश्वर में इच्छाभई एक से नाना हों
तब आकाश उपजतभयो रूपरंग बिनसों
वायु होतभा काश से तेज वायु से हो-
जल तेजसे होतहै पृथिवी जलसे हो
अन्न सर्व पृथ्वीभई जगत अन्नसे हो
इसविधि रचो ब्रह्महै पढ़ै वेद, कहै सो

स्वरूपोपनिषद

श्लो॰ अज्ञाना द्वुद्बुदोजात माकाशं बुद्बुदोपमं
आकाशाद्वायुरुत्पन्नं वायुस्तेजः पयस्ततः
अद्भ्यश्च पृथिवीजाता ततो व्रीहियवादिकं
तदैक्षत बहु स्याम प्रजायेय इति ॥१८॥

टीका अज्ञान ब्रह्म-अव्याकृत से बुलबुले के समान आकाश होताभया-बुलबुलाकीतरह आकाश से हवा-हवा से तेज अर्थात् अग्नि-तेज से जल तिसीतरह जलसे पृथिवी-तिस पृथिवी से धानजौ आदि अन्न पैदाहुआ- तदैक्षत-सोब्रह्म इच्छा करताभया कि बहुत रूपहोऊं भले प्रकार-उत्पन्न होऊं यहबात श्रुतिसे निश्चित होतीहै ॥

सिद्धान्त यह कि अव्याकृतजो ब्रह्मके विषय अध्यस्थ है वहीसबरूप होतेभये वही जगत होताभया क्योंकि अध्यस्त कोई वस्तु नहींहै जैसे रस्सी का सर्प भ्रममात्र है उसी तरह अज्ञान से सब मालूम होताहै नहींतो एक ब्रह्म पूर्णहै ॥

दो॰ निश्चै वस्तू आदिजो कारण तिसकोजान
पीछे उत्पतजो होवे कारज तिसको मान
कारण कारज भेदनहिं निश्चयजानो सोइ

जैसे घटसे मृत्तिका भिन्न कहै नहिं कोइ ॥
छान्दोग्य उपनिषद् सामवेद
वाचारंभणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्येव
सत्यं इत्यादिश्रुतेः कार्यकारणयोर्भेदात्स्मृतेः

टीका नाम नाम करके विकारवान के कथन मात्र है- मृत्तिका मिट्टी निश्चय करके सत् है- कूंडा और घड़ा और मटिया यह सब केवल मुख का कथन है यथार्थ में सब मिट्टी है इसी तरह सब ब्रह्म है कारज कारण दोनों के अभेद होने से - क्यों कि जो वस्तु जिस वस्तु से बनती है वास्तव में वही वस्तु होती है दूसरी कोई वस्तु नहीं होजाती यदि कहै कि कूंडा आदि में उपादान कारण मिट्टी है निमित्त कारण कुंभार और चाक आदि उसके बनाने का अलग है इसी तरह ब्रह्म उपादान कारण है निमित्त कारण कोई दूसरा होगा सो इसमें - जगत का उपादान कारण और निमित्त कारण दोनों ब्रह्म है जिस प्रकार मकरी अपने तार को अपने मुह से निकालती है और आपही खाइलेती है उस तार का उपादान कारण और निमित्त कारण दोनों मकरी है इसी प्रकार ब्रह्म आपही आप है

कोई दूसरा नहीं है उपादान कारण उसको कहते
हैं जो किसी चीज़ के पहले भी हो पीछे भी हो
बीच में भी हो और निमित्त कारण उसको कहते
हैं जो उसका बनाने वाला हो प्रयोजन यह कि
जिसके द्वारा वह चीज़ बनाई जाय ॥

शिष्य प्रश्न

दो॰ कारज कारण जानलिय एकहि ब्रह्मस्वरूप
कहिय दयालु कृपाकरि आत्म अनात्म निरूप

टीका कारज कारन दोनों को एक ब्रह्म स्वरू
निश्चय किया - अब दया करके आत्मा अनात्मा
को कहिये ॥

गुरु उत्तर

दो॰ देह अवस्था तीन हैं पंच कोस पंच प्राण
अंतः करण चतुष्टय सर्व अनात्मा जान

स्मृति आचार्य

श्लो॰ नत्वं देहो नेन्द्रियाणि न प्राणो न मनो न धीः ।
विकारित्वाद्विनाशित्वाद् दृश्यत्वाद् घटवत्
टीका हे शिष्य तुम देह- इन्द्रिय- प्राण- मन
अहंकार बुद्धि और चित्त नहीं हो क्योंकि ये सब
घड़े के समान विकारवान् नाशवान् और दृश्य हैं

सिद्धान्त यह कि हे शिष्य देह इन्द्रिय आदिक जितनी चीज़ें हैं तुम उस से जुदा हो क्योंकि यह सब चीज़ गुनों का विकार है और नाश होता है और दृश्य है जैसे घड़ा विकार है और नष्ट होजाता है और दूसरा उसको देखता है यह सब जो दृश्य हैं अनात्मा हैं तात्पर्य यह कि कोई चीज़ नेत्र करके देखी जाती हैं कोई चीज़ मन करके बुद्धि करके जानी जाती हैं विकार उसको कहते हैं जो किसी चीज़ से बनाई जाय जैसे मिट्टी से घड़ा, घड़ा कारन-विकार मिट्टी का है ॥

साक्षी जाने सर्व को सत् चित् आनँद रूप
आत्मा करिके जानियो सो तुम शुद्ध स्वरूप

स्मृति आचार्य

विशुद्धं केवलं ज्ञानं निर्विशेषं निरंजनं
यदेकं परमानन्दं तत्त्वमस्य हृयं परं ॥

टीका विशुद्धं-जो माया मलसे रहित है-केवलं जो सब धर्मों से रहित है-ज्ञानं-जो चैतन्य स्वरूप है-निर्विशेषं जो सब प्रपंच से रहित है-निरंजनं-जो सबके संगसे रहित है-एकं-जो एक है परम आनंद रूप है-अद्वितीय है सबसे ... परे-उत्कृष्ट है हे शि

सिद्धान्त यह कि जो सब का जानने वाला है उस से ऊपर जानने वाला कोई नहीं है सो तुम हो ॥

स्मृति - आचार्य

* शब्दस्याद्यन्तयोः सिद्धं मनसोपि तथैव च
मध्ये साक्षि तथा नित्यं तदेव त्वं भ्रमं जहि
† अन्वय व्यतिरेकाभ्यां जाग्रत्स्वप्न सुषुप्तिषु
यदेकं केवलं ज्ञानं तदेवाहं परं बृहत् ॥

* टीका शब्द- जिसको वेद, आदि अन्त दोनों के विषय सिद्ध करता है तिसी तरह मन के भी आदि अन्त दोनों में सिद्ध है मध्य के विषय भी साक्षीरूप करके नित्य- नाश से रहित है हे शिष्य निश्चय करके सो तुम हो भ्रम को त्यागो - सिद्धान्त यह कि जो सब का साक्षी है सो तुम हो ॥

† अन्वय व्यतिरेकाभ्यां - जो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के विषय अनुस्यूत व्यतिरेक दोनों करके एक है - केवलं - निर्धर्मिक है - ज्ञानं - चैतन्य स्वरूप है सो निश्चय करके हम हैं - अन्वय उसको कहते हैं जो माला के तागे की भांत दाने के भीतर हो जिस में सब दाने गुंथे रहते हैं - व्यतिरेक उसको कहते हैं जो अलग हो जैसे तागा दाने में मिला भी है

और अलगभी है दूसरा यह कि सोना और भूष-
ण-गहना- सोना गहनेमें अनस्यूत भी है
और अलग भीहै गहना केवल कहने मात्र को
है नहींतो सोना में गहना नहीं है ॥

सिद्धान्त यह किजो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति का
जाननेवाला है सो निश्चय करके हम हैं वृहत
तथा व्यापक ॥

हस्त पाद दीसे प्रगट स्थूल देह वहिजान
स्वप्नहि में जो खेलता सूक्ष्म देह पहिचान
स्थूलसूक्ष्मका बीजजो कारणमूल अज्ञान
सो सुषुप्तिमें जानियो निश्चयकरि अनुमान
अंतःकरणचतुष्टययुत पंचकोष पंच प्राण
तिनके भीतर जानियो कहे वेद परमान ।
स्वर्ग नर्क जन्म न मरण स्थूलसूक्ष्म कोजान
आत्मा सबसे भिन्नकर साक्षीरूपपहिचान

प्रस्तावना

गुणैःसंवेष्टितोदेहस्तिष्ठत्यायातियातिच
आत्मान गंतानागंता किमेनमनुशोचसि

टीका - गुणो करिके युक्त देह- गुनों से प्रयोजन
इन्द्रिय से है इन्द्रिय से प्रयोजन सूक्ष्म शरीर औ

अन्तःकरण से है और देह से प्रयोजन स्थूल देह से है - सूक्ष्म शरीर करिके संविष्ट-युक्त स्थूल देह कुछ काल स्थित रहता है फिर जन्मता मरता है आत्मा न जाता है न आता है - एवं आत्मानं - ऐसे आत्मा को तुम क्यों सोच करता है - संविष्ट उसको कहते हैं जो भीतर बाहर सब जगह व्यापक हो ॥

सिद्धान्त यह है कि स्थूल देह जो सूक्ष्मदेह से युक्त है वही जन्मता मरता है आत्मा ज्यों का त्यों रहता है - सब का साक्षी है ॥

शिष्य प्रश्न

दो॰ तीन अवस्था आदि ले लीना नीक विचार
अब समष्टि व्यष्टी कहो निश्चै होवे सार ।

टीका हे भगवन् तीन अवस्था आदि लेकर विचार लिया अब दया करके समष्टि व्यष्टि को कहिये

गुरु उत्तर

दो॰ जाग्रतादि में करत है अभीमान जो नित्त
विश्वजीव तिसको कहे निश्चै जानो मित्त
जानु व्यवहारिक इसे जीव कहत सब कोय
जान प्रक्रिया याहि को सूरख ज्ञानी होय
विराट विश्व दोउ एक हैं निश्चै करियो नित्त

वन वृक्ष दृष्टान्त से भरम न करियो चित

स्मृति - आचार्य

श्लो० येयंजाग्रदवस्था शरीरं करणाश्रयं ।
यस्तयोरभिमानीस्यात् विश्वइत्यभिधीयते
विश्वं वैराज रूपेण पश्येद् भेद निवृत्तये ।

टीका जो यह जाग्रत अवस्था स्थूल शरीर इन्द्रियों का आसरा है तिन दोनों का जो अभिमानी है विश्व इस प्रकार प्रतिपादित है क्या विश्व उसको कहते हैं विश्व को विराट रूप करिके देखिये भेद निवृती के अर्थ - भेद द्वैत छूट जाने के लिये ॥

सिद्धान्त यह कि विश्व और विराट दोनों एक हैं ॥

सो० स्वपन अरु सूक्ष्म शरीर में सदा अभिमानी जो
तैजस तिसको जानियो कहे आचारज सो ।
प्रतिभासक यहजीव है निश्चै करियो नित
इस प्रकार को जानकर भरम न करियो मित्त
तैजस सूत्र अरु आतमा तिनमें भेद न कोय
जल तलाव दृष्टान्त से निश्चै करिये सोय

स्मृति आचार्य

श्लो० अभिमानी तयोर्यस्तु तैजसः परिकीर्तितः
हिरण्यगर्भरूपेण तैजसं चिंतयेद् बुधः

टीका स्वप्न अवस्था सूक्ष्म शरीर है तिन दोनों का अभिमान करनेवाला जो है तेजस कहते हैं हिरण्यगर्भ रूप करके तेजस को चिन्तवन करे बुध नाम विद्वान-पंडित-विवेकी जो मुख्यतत्व का जानने वाला है ॥

सिद्धान्त यह कि तेजस व्यष्टि हिरण्यगर्भ समष्टि दोनों को एक जाने दो नहीं हैं ॥

दो· सुषुप्ति कारण शरीर में जो अभिमानी होय
प्राज्ञ तिसीको जानियो कहै ब्रह्मवित् सोय
जीव प्रमारथ इसीको निश्चै करके जान
इस प्रक्रिया को जानकर होओ निर अभिमान
प्राज्ञ ईश्वर में भेद नहिं श्रुती कहै पुकार
वनवृक्ष दृष्टान्त से करियो नित्य विचार

स्मृति वा श्रुति

श्लो अभिमानी तयोर्यस्तु प्राज्ञ इत्यभिधीयते
जगत कारण रूपेण प्राज्ञात्मानं विचिंतयेत्
एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञः इत्यादि श्रुतेः ॥

टीका सुषुप्ति अवस्था और कारण शरीर इन दोनों के अभिमानी को प्राज्ञ कहते हैं। जगत का कारण रूप करके प्राज्ञ आत्मा को अर्थात् जीव को

चिन्तवन करे ॥

सिद्धान्त यह कि प्राज्ञ जीव व्यष्टि को ईश्वर समष्टि जाने यह स्मृती है और श्रुति से भी निश्चय होताहै कि यह प्राज्ञ आत्मा सर्व का ईश्वर है और प्राज्ञ आत्मा सर्वज्ञ है ॥

दो॰ तैजस विश्व प्राज्ञ को व्यष्टि करि पहिचान
वैराट सूत्र आत्मा ईश्वर समष्टी जान
समष्टी व्यष्टी भेद नाहिं कहै प्रकाश जो
एकान्त देश में बैठके नित्य विचारे सो
समष्टी व्यष्टी भेद जो अज्ञानी को होय।
आत्मा पूरण सर्व में निश्चै जानो सोय।

पंचीकरन वार्तिक

श्लो॰ विश्वतैजस सौषुप्त विराट सूत्राक्षरात्मभिः।
विभिन्नं मिथ्यं मोहादेकं तत्वं चिदात्मकं १
स्थूल वैराज योरैक्यं सूक्ष्म हिरण्य गर्भयोः
अज्ञानमाययो रैक्यं प्रत्यक् विज्ञान पूर्णयोः २

पहले श्लोक की टीका - विराट सूत्रात्मा अक्षरात्मा ईश्वर समष्टि से विश्व तैजस सुषुप्ति - प्राज्ञ व्यष्टि अज्ञान ते भिन्न भिन्न प्रकार हैं स्वरूप करके एक चैतन्य आत्मा है ॥

सिद्धान्त यह कि तीन जीव व्यष्टि तीन ईश्वर समष्टि अज्ञान से भिन्न भिन्न हैं ज्ञान करके एक हैं ॥

२ श्लोक की टीका — स्थूल व्यष्टि विराट समष्टि दोनों एक हैं सूक्ष्म व्यष्टि और हिरण्यगर्भ समष्टि दोनों एक हैं अज्ञान - कारण व्यष्टि माया - ईश्वर समष्टि दोनों एक हैं प्रत्येक - जीवात्मा - त्वंपद - व्यष्टि विज्ञान - ईश्वर तत्पद समष्टि दोनों पूर्ण ब्रह्म हैं इस प्रकार बिंब के साथ प्रतिबिम्ब की एकता है ॥

सिद्धान्त यह कि समष्टि व्यष्टि में ज्ञान करके भेद नहीं है जैसे जल और जलाशय और बन और वृक्ष में फर्क नहीं है एक है क्योंकि जहां जल है वहीं जलाशय है और जहां वृक्ष है वहीं बन है ॥

दो॰ समष्टि व्यष्टी अनात्मा क्षेत्र करिके जान ।
दृष्टा साक्षी आत्मा क्षेत्रज्ञ कहै भगवान

भगवत्गीता

श्लो॰ इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्र इत्यभिधीयते
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ मिति तद्विदः

टीका हे अर्जुन जिस समष्टि व्यष्टि आत्मा को क्षेत्र इस प्रकार कहते हैं इसको अनात्मा को जो

जानता है- अज्ञान कालमें अपने को शरीर आ-
दिक अनात्मा जो हैं सो मानता है और ज्ञान काल
में अपने को सबका साक्षी सत्चिद आनंद स्वरूप
जानता है क्षेत्रज्ञ तिसको इस प्रकार कहतेहैं त-
द्विद:- क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके स्वरूप को यथावत
जाननेवाले विद्वान- ज्ञानी ॥

सिद्धान्त यह कि जितना समष्टि और व्यष्टि
प्रपंच दृश्य है सब अनात्मा है सबका जो जाननेवा-
ला द्रष्टा है सो आत्मा है ॥

सो॰ आत्मा अनात्मा जान्या दृष्टा दृश्य स्वरूप
लै प्रकृ या को अब कहो भगवन आनंद रूप

टीका हे भगवन् आत्मा अनात्मा को जानलिया
अब ब्रह्म में लय किस प्रकार होतेहैं उसको कहिये

गुरु उत्तर

दो॰ जगत पृथ्वी में जात है पृथिवी जल में जाय।
जल जात है तेज में तेज पवन में जाय।
पवन अकाश में जात है अकाश ईश्वर में जाय
ईश्वर जात है ब्रह्म में ब्रह्म कहीं नहि जाय

श्रुती- स्वरूपोपनिषद

श्लो॰ पृथिव्यप्सु पयो वन्हौ वन्हिर्वायौ नभस्यसौ

नभोप्य व्याकृते तस्य शुद्धे ब्रह्मोस्म्यहं हरिः

टीका पृथिवी जल के विषय जल अग्नि के विषय अग्नि वायु के विषय सो वायु आकाश के विषय आकाश निश्चय करके अव्याकृत के विषय सो अव्याकृत शुद्ध ब्रह्म के विषय लय होता है सो शुद्ध ब्रह्म मैं हूं और हरि-सब का लय करने वाला मैं हूं ॥

सिद्धान्त यह कि ज्ञान करके सब ब्रह्म में लय होता है सो शुद्ध ब्रह्म मैं हूं यह ज्ञान लय है स्वरूप लय नहीं है - कारज को कारन रूप जानना यह ज्ञान लय है ॥

आदि अंत मध ब्रह्म है निश्चै जाको होय
मुक्ति तिसी को होत है कहै ब्रह्मवित् सोय

भगवत गीता

समंपश्यन्हि सर्वत्र समवस्थित मीश्वरं
नहिनस्त्यात्मनात्मानं ततोयाति परांगतिं

टीका निश्चै करके सब में बराबर स्थित हुए ईश्वर को सम-बराबर-एक रस देखता हुआ आत्मा करके आत्मा को हनन नहीं करता तिससे परमगति को प्राप्त होता है-मुक्त होता है ॥

सिद्धान्त यह कि अपने को दूसरा, ईश्वर को और
जीव को दूसरा जानना। आत्मा को जो अपना आप
है पूरन न जानना यही आत्मा का हनन करना है
ऐसा पूरन न जानने से बारंबार मरना होता है जो
सम-बराबर-एकरस पूरन जानता है वह मुक्त होता है॥

भगवत गीता

श्लो॰ यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति

टीका जो मेरे को अर्थात् आत्मा को सर्व के विषय
अधिष्ठान रूप करके देखता है और सर्व को मेरे
विषय-आत्मा के विषय अध्यस्त जानकर देखता
है तिस पुरुष को मैं नहीं परोक्ष होता-नहीं भूलता
हूं और वह पुरुष मेरे को नहीं परोक्ष होता-काहे
तें वह मेरा आत्मा है और मैं उसका आत्मा हूं॥

सिद्धान्त यह कि जो कोई सिवाय आत्मा के और
नहीं देखता वह आपही आप है क्योंकि जब एक
पूरन आत्मा है तब किसको देखे और कौन देखे
और कौन भूले और किसको भूले पूरन आपही आ

दो॰ जैसे एक अकाश ही घट मठ में भरपूर
तैसे सर्व शरीर में एक ब्रह्म नहिं दूर॥

भगवतगीता

श्लो॰ बहिरन्तश्च भूतानामचरंचरमेवच ॥
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थंचांतिकेचतत्

टीका तत्- सो ब्रह्म चराचर भूतोंके बाहर अन्दर है- चकारात्- मध्यमें भूत भी ब्रह्म है नि-श्चय करिके सो ब्रह्म सूक्ष्म होनेसे किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है- किसी इन्द्रिय करिके जाना नहीं जाता सो ब्रह्म अविवेकी को दूर है- प्राप्त नहीं होता और विवेकी- ज्ञानी के अन्तर है- अपने पास - अपना आप है ॥

सिद्धान्त यह कि सब चराचर के आदि अन्त मध्य ब्रह्म है जो नहीं जानता उसको नहीं मिलता जो जानता है वह आपही ब्रह्म है क्योंकि दूसरी कोई चीज़ नहीं है जिसको जाने जैसे एक आकाश घट मठ में भरपूर है तैसे ब्रह्म पूरन है दूर नहीं ॥

स्मृति-आचार्य्य

श्लो॰ एकमेवाद्वितीयंच नामरूप विवर्ज्जितं
एकमेवा समं तत्त्वं सोहं ब्रह्म निरामयं

टीका एकं एव अद्वितीयं- ब्रह्म सजातीय विजा-तीय स्वगति भेद से रहित है नामरूप से रहित है-

और सम तत्व स्वरूप- एकरस है सो ब्रह्म निरोग सब उपद्रव से रहित मैं हूं तत्वं-तत्- सो ब्रह्म- त्वं-तुमजीव सो ब्रह्म है जीव तुम हैं ॥

सिद्धान्त यह है कि ब्रह्म का सजातीय- दूसरा ब्रह्म नहीं है और न कोई विजातीय- ब्रह्म के सि- वाय है और स्वगत भेद कोई अंश ब्रह्म के जीव ईश्वर जगत्- वृक्षों की डाली पत्ते की तरह नहीं है क्योंकि जीव ईश्वर जगत् आदि ब्रह्म में अध्यस्त है सो तुम अद्वितीय ब्रह्म हो सजातीय उसको कहते हैं जिस तरह मनुष्य के साथ मनुष्य और विजातीय उसको कहते जिस तरह मनुष्य और वृ- क्ष आदि और स्वगत भेद उसको कहते हैं जिस तरह वृक्ष में डाली और पत्ता आदि सो यह तीनों चीज़ ब्रह्म में नहीं है ब्रह्म निरवयव है ॥

दो ज्यों घट के संताप में ताप आकाशहि नाहिं
त्यों देह के दुखन में देही दुखता नाहिं

भगवत गीता

श्लो यथा सर्वगतं सौक्ष्म्या दाकाशं नोपलिप्यते
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मानोपलिप्यते ।

टीका जैसे सर्व व्यापक आकाश सूक्ष्म होनेसे

किसीके धर्मके साथ नहीं लिप्यमान होता है तैसे सर्व देहके विषय स्थित हुआ आत्मा किसी देह इन्द्रियके धर्मके साथ नहीं लिप्यमान होता है लिप्यमान उसको कहते हैं जो एक का धर्म दूसरे में होजाय ॥

दृष्टान्त

जैसे हांडी चूल्हा पर रखकर खिचड़ी उस में छोड़कर आग जलादी जाती है खिचड़ी पकजाती है पानी सूख जाता है हांडी स्याह होजाती है आकाश जो पोला र हांडी में है जैसा का तैसा बना रहता है न गलता है न सूखता है न स्याह होता है ॥

दृष्टान्त

तैसे ब्रह्म सर्वदेहमें व्यापक है किसी देह इन्द्रिय का धर्म उसमें नहीं लगता षट् विकार जो धर्म देह के हैं आत्मा उस धर्म और भोग से वचा सुखदुख आदिसे रहित है सुखदुख आदि और क्रिया जो कुछ है वह सब देह और इन्द्रिय के धर्म और भोग हैं आत्मा ज्यों का त्यों है ॥

दो॰ पूरण एको ब्रह्म जो हमसे अन्य न हो

इस निश्चै से मुक्त हो कहै वेद सिर सो
श्रुति सर्वोपनिषद

श्लो॰ अहमेव परंब्रह्म वासुदेवाख्य मव्ययं ।
इतिस्यान्निश्चितोमुक्तो बद्ध एवान्यथाभवेत

टीका ब्रह्म कैसे ब्रह्म उत्कृष्ट और पूर्ण और
वासुदेव है नाम जिनका- सब का अधिष्ठान और
माया से रहित है सो ब्रह्म मैं हूं इस प्रकार निश्चय
करनेवाला पुरुष मुक्त होताहै और सिवाय इसके
जिसको ऐसा निश्चय नहींहै बंधन को प्राप्त होता है
वास उसको कहते हैं जहां सब लोग बसते हों व
देव स्वयंप्रकाश- अपने आप प्रकाशमान होय
उसको कहतेहैं सो ब्रह्म में सर्व कल्पित हैं- ब्रह्म
करके दिखलाई पड़ते हैं जैसे रज्जु में सर्प और
ब्रह्म स्वयंप्रकाशहै इसवास्ते वासुदेवनामब्रह्मकोहै
सिद्धान्त यह कि जो सब का अधिष्ठान और प्र-
काशक सो मैं हूं क्योंकि प्रकाश्य और अधिष्ठान
में भेद नहीं होता ऐसा निश्चय करना यही मुक्तिहै ॥

दो॰ बंध अहंमम इतनही न अहंमम यह मुक्त
बंध मुक्त गुण मायका कहै अचारज युक्त

स्मृति प्रमाणं

श्लो॰ अहं ममेत्ययं बंधो नाहं ममेति मुक्तता
बंध मोक्षौ गुणैर्भाति गुणाः प्रकृति संभवाः

टीका मैं हूं मेरा है इस प्रकार बंधन है न मैं हूं न मेरा है इस प्रकार मुक्ति है बंध मुक्त दोनों गुणों करके भान होते हैं - जाने जाते हैं और गुण प्रकृति संभव हैं - प्रकृति है माया - अज्ञान है ॥

सिद्धान्त यह कि मैं और मेरा यह जो अज्ञान का कार्य है यही बंधन है इसका छोड़ देना यही मुक्ति है और बंधन मुक्ति गुणों करके है - सत रज तम यही माया - अज्ञान है ॥

दो॰ मुक्ताभिमानी मुक्त ज्यों बंधाभिमानी बंध
विद्वज्जन स्मृति कहत है जानो भय निर्दंध

अष्टावक्र

श्लो॰ मोक्षाभिमानी मोक्षोहि बंधोबंधाभिमान्यपि
किंवदंतीह सत्येयं यामतिः सागतिर्भवेत ।

टीका निश्चय करके मोक्षरूप ब्रह्म का अभिमान करनेवाला अर्थात् मैं ब्रह्म हूं ऐसा दृढ़ निश्चय वाला मोक्ष है - ब्रह्म आपही आप है । और निश्चय करके बंधन का अभिमान करनेवाला अर्थात् मैं

जीवहूं ब्रह्म नहींहूं ऐसा जाननेवाला बंधन अर्थात् संसार को प्राप्त होता है ॥

शंका - ऐसा क्यों कहते हो। उदाहरण। इसमें इस श्रुति का अर्थ सत्यहै त्रिकाल में अबध्यहै काटा नहीं जाता और अनुत्तर है - यामतिः सागतिर्भवेत् - जैसी मति होतीहै वैसीही प्राप्ति होतीहै ॥

सिद्धान्त यह कि जो कोई अपने को ब्रह्म मानता है वह मुक्त - ब्रह्मरूप है जन्म मरण से रहित है। और जो कोई अपने को जीव आदिक ब्रह्म से अलग जानता है सो बारंबार जन्म मरण आदि दुखको प्राप्त होता है ॥

दो॰ मुक्ती केवल ज्ञानसे कर्म समुच्चै नाहिं।
कर्म समुच्चै जो कहै वेद जानता नाहिं।

विश्वेश्वरी पद्धति

श्लो॰ कर्मणा बध्यते जंतु र्विद्यया च विमुच्यते
तस्मात्कर्म नकुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः

टीका जन्तु कर्मों करके बंधेहुए होतेहैं - विद्या अर्थात् ज्ञान करके छूटजाते हैं मोक्षको प्राप्त होते हैं तिसी से जितने सन्यासी पारदर्शी ब्रह्म के साक्षात्कार करनेवाले ज्ञानी हैं कर्म नहीं करते ॥

सिद्धान्त यह कि जो कोई कर्मों के फलकी इच्छा करके कर्म करता है बारंबार संसार में प्राप्त होकर दुख सुख फल कर्मोंका भोगता है और जो ज्ञानी अपनेको और सर्व को ब्रह्म जानता है मुक्त होता है क्या सब दुखों से रहित होता है क्योंकि मुक्ति ज्ञान से होतीहै कर्मों के करने करके नहीं होती कर्म और ज्ञानके मिलने से मुक्ति जो कोई कहता है वह वेद के अर्थ को नहीं जानता है - जो पुरुष कर्म और ज्ञान मिल करके मुक्ति कहते हैं वे वेद के अर्थ को नहीं जानते ॥

दो॰ चैतन्य एको ब्रह्म है कहै वेद परमान।
सोई चैतन्य आपको श्रद्धा करके मान॥

श्रुति-वृहदारण्य

श्लो॰ सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म - इत्यादि श्रुतेः

टीका- सत्यंज्ञान-सत्य है - नाश से रहित है चैतन्य स्वरूप है अनन्त है - अन्त से रहित है - पूर्ण है इस प्रकार श्रुति से निश्चय होता है कि सत्चित् आनन्द ब्रह्मही है दूसरा नहीं है सो चैतन्य रूप अपने को जान ॥

दो॰ साक्षी चैतन्य जो कह्यो तीन अवस्था माहिं
करि विचार तुम जानले तुमसे दूजा नाहिं

श्रुति निरालम्ब उपनिषद्

श्लो॰ यच्चैतन्यं मनुस्यूतं जाग्रत्स्वप्न सुषुप्तिषु
तद्देवस्त्वं परं तत्त्व मितो नास्त्यधिकं परं

टीका जो चैतन्य ब्रह्म जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के विषय अनुस्यूत है सो परम स्वरूप ब्रह्म निश्चय करिके तुम हो इससे अधिक और उपदेश वेद का नहीं है ॥

सिद्धान्त यह कि जो ब्रह्म सर्वोपरि है हे शिष्य सो तुम हो और उपदेश इसके सिवाय वेदमें नहीं है विचार करके देखो कि सिवाय तुम्हारे किसी अवस्था में दूसरा साक्षी नहीं है

दो॰ श्रद्धा करिके ज्ञान में इन्द्रिय जीते जो
ज्ञान तिसी को होतहै भगवत कहते सो

भगवतगीता

श्लो॰ श्रद्धावान्लभतेज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः

टीका श्रद्धावान पुरुष- गुरुके और वेदके वाक्य में विश्वास करनेवाला पुरुष- गुरुकी सु-श्रूषा - सेवा करता हुआ इन्द्रियों को जीतेहुए ज्ञान को प्राप्त होता है ॥

सिद्धान्त यह कि जो पुरुष श्रद्धा करके ज्ञानमें

इन्द्रिय को जीतता है तिसी पुरुष को ज्ञान होता है

दो॰ ज्ञान होत वैराग से मुक्ति ज्ञान से होय

सर्व शास्त्र का यह मता निश्चै जानो सोय

स्मृति

श्लो॰ ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्ति मचिरेणाधिगच्छति

श्रुति

ज्ञानादेवतु कैवल्यं - इत्यादि श्रुतेः ॥

टीका ज्ञान को प्राप्त करके शीघ्र परम शान्ति-कैवल मुक्ति को प्राप्त होता है कैवल मुक्ति ज्ञान से होती है - एवतु - और प्रकार नहीं होती ॥

सिद्धान्त यह कि गुरु में जिसको श्रद्धा है व गुरु की सेवा करता है व इन्द्रिय को अपने वश में किये है तिस पुरुष को ज्ञान होता है और ज्ञान होकर कैवल मुक्त होता है और किसी तरह मुक्त नहीं होता है - मुक्ति पांच प्रकार की है चार प्रकार की मुक्ति उपासकों की है एक मुक्ति ज्ञान की है - उपासक को मुक्ति के पीछे फिर भी जन्म होता है ज्ञानी को कैवल मुक्ति के पीछे फिर जन्म नहीं होता इसीसे कैवल मुक्ति उत्तम है और कठिनता से प्राप्त होती है - उपासकों की मुक्ति का यह नाम है - सालोक्य-

सारूप्य- सायुज्य- सारिष्ट- जो निष्काम होकर विधि को न जानकर नियम पूर्वक देवता की पूजा करता है वह मनुष्य उस देवता के लोक को प्राप्त होकर अपनी कामना के अनुरूप भोग को भोगता है यह सालोक्य मुक्ति है- जो विधि को जानकर नियम पूर्वक देवता की पूजा करता है सो मनुष्य देवलोक में उस देवता के स्वरूप को प्राप्त होकर रहता है- यह सारूप्य मुक्ति है- जो मनुष्य बाग़ तालाब कुआ मकान शिवालय आदि देवस्थान यह सब बनाकर देवता के अर्पण करदेता है और देवकर्म और पितृकर्म सब देवता के अर्पण करता है वह देवलोक में उस देवता के समीप सदा बना रहता है यह सारिष्ठि मुक्ति है- जो मनुष्य जो कुछ कर्म करता है जो खाता है व जो हवन करता है व जो कुछ दान देता है व जो तप करता है उसको यही जानता है कि जो कुछ मैं करता हूं यह सब देवता करता है मैं नहीं हूं- स्वार्थ से रहित है सो पुरुष देवता के लोक को प्राप्त होता है और सब प्रकार के कल्याण को भोगता है और देवता के बराबर ऐश्वर्य और तेज को प्राप्त होता है यह

सायुज्य मुक्ति है— यह चिन्चार मुक्ति उपासककी है जितनी उपासना की थी उतने फलको भोगकर पुनः जन्मको प्राप्त होता है क्योंकि जोकुछ बनता है वह बिगड़ताहै पहले मुक्ति नथी कर्म करके यह मुक्ति प्राप्त हुई सो उस कर्मके फलके भोगने के पीछे वह मुक्ति फिर जाती रहती है वह पुरुष देवलोक से फिर मर्त्यलोक में आताहै दुख सुख भोगता रहता है— पांचवीं मुक्ति ज्ञानकी है— जो मनुष्य शान्ति आदि चतुष्टय साधन करके युक्त ज्ञान द्वारा ब्रह्म को— आत्मा को अपना आप करके नि-श्चय करता है सो पुरुष कैवल्य मुक्ति को प्राप्त होता है— ब्रह्म में अभेद होता है— मिलजाता है जैसे गंगाजल में गंगाजल प्रकाश में प्रकाश मिलकर फिर नहीं अलग होसकता— इसी तरह ज्ञानी पुरुष ब्रह्म में मिलकर फिर ब्रह्मसे जुदा नहीं होसकता उस को कैवल्य मुक्ति कहते हैं दूसरी मुक्ति की तरह कैव-ल्य मुक्ति कर्म करके उत्पन्न नहीं होती क्योंकि इस मुक्ति में अज्ञान की निवृत्ति है और किसी चीज़ की प्राप्ति नहीं है यह पांच प्रकार की मुक्ति शिवगीता में लिखी हैं— नैयायिक— प्रभाकर नाम मीमांसक-

बौद्ध[३] नाम नास्तिक व वेदान्ती[४] अपनी अपनी मुक्ति भिन्न भिन्न मानते हैं - अत्यन्त करके दुख की निवृत्ति मुक्ति नैयायिक की है और पहले दुख का अभाव - जब पहले न था तो अब कहां से होगा इसके परिपालन करने से मुक्ति प्रभाकर की और आत्मा का नाश होना मुक्ति बौद्ध की और आत्मज्ञान से मुक्ति वेदान्त की है ॥

शिष्य प्रश्न

दो॰ साधन श्रद्धा वैराग्य दोनों बड़े अनूप ।
अब स्वरूप तिनका कहो मिटाय के भूप

टीका हे मुमुक्षु के ऊपर दया करने वाले श्रद्धा और वैराग्य को आपने साधन कहा अब तिन दोनों का स्वरूप कृपा करके कहो ॥

गुरु उत्तर

दो॰ गुरु वेद के वाक्य में विश्वास जो होइ
श्रद्धा तिसको कहत हैं निश्चै जानों सोइ
सर्व इच्छा को छोड़ के आत्म इच्छा जो
वैराग्य तिसीको जानियो कहैं अचारज सो

वचन आचार्य

निजानन्दे स्पृहा नान्ये वैराग्यस्यावधिर्मत

वैराग्यस्य हेतुः विषयेषु दोष दृष्टिः। वां
ता ग्रन्थवत् हेयबुद्धि स्वरूपं। पुनराशाभा
वः कार्यमिति भावनीयं। वैराग्यस्याव
धिर्ब्रह्मलोकादि तृणीकारः॥

टीका निजानन्दे- अपने आनन्द स्वरूप
के विषय इच्छा होनी और दूसरी इच्छा न हो-
नी वैराग्य की अवधि है यही सब आचार्यों का
और शास्त्र का और विद्वानों और वेदान्तों का मत है - सब
वस्तुओं के विषय दोष दृष्टि होनी- दुख रूप जान
ना वैराग्य का हेतु- बीज है- वान्ति- वमन की
तरह विषयों के भोगों का त्याग बुद्धि वैराग्य का
स्वरूप है फिर भोगों की आशा न होनी वैराग्य
का कार्य है इस प्रकार भावना करना- जानना
योग है- ब्रह्मलोक से आदि लेकर जितने
लोक और ऐश्वर्य और भोग हैं सब को सूखे
तृण की तरह जानना- जिस प्रकार सूखा ति-
न का रास्ते में पड़ा रहता है मनुष्य चला जाता
है कुछ ख़याल नहीं होता कि क्या चीज है उसी
प्रकार ब्रह्मलोक से आदि लेकर किसी का ख़या-
ल न होना वैराग्य की अवधि है ॥

सिद्धान्त यह कि अपना आप जो आनन्द स्वरूप है उसी के मिलने की अभिलाषा करना और जितनी चीज़ हैं सब को दुख स्वरूप जानना और जिस प्रकार वमनके खाने की इच्छा किसी को नहीं होती उसी प्रकार किसी चीज़ की इच्छा न करना और भी किसी अवस्था में किसी भोग की आशा न करना और सूखे तिनके की तरह सब को जानना उसको वैराग्य कहते हैं- और गुरु वेद के वाक्य में विश्वास करना उसको श्रद्धा कहते हैं जैसा ऊपर लिखागया वही वैराग्य व श्रद्धा का स्वरूप है ॥

दो॰ जैसे बुल्ला फेन तरँग जल से भिन्न न हो
तैसे सर्व शरीर ही ब्रह्म से अन्य न हो

श्रुति सनत्सुजात भाष्य की

श्लो॰ यथा काशो विकाशोऽस्ति गंगायां वीचियो यथा। तद्वच्चराचरं सर्वं ब्रह्मन्येऽस्य लीयते ॥ इत्यादि श्रुतेः ॥

टीका जैसे घट आकाश महाकाश ही है जैसे गंगाजी में तरंग- लहर गंगारूप ही है तैसे ही सर्व चराचर जगत ब्रह्म के विषय उत्पति हो

न्य होता है इस प्रकार श्रुती से निश्चय होता है कि सर्व ब्रह्म है ॥

सिद्धान्त यह कि जैसे अज्ञान से घट आकाश महाकाश से भिन्न और लहर गंगाजल से भिन्न कहाजाता है वास्तव में वही गंगाजल लहर और वही महाकाश घट आकाश है उसी तरह अज्ञान करके जगत पृथक जानाजाता है और नहीं तो ब्रह्म से सिवाय दूसरी चीज़ नहीं है एक ब्रह्म ही है ॥

दो॰ आत्म आनंद छोड़के जो है अपना रूप
विषयों को जो भोगता जानो गधा अनूप

महा भारत

श्लो॰ आत्मानमात्मस्थं नवेत्ति मूढ़ः। संसारकूपे परिवर्त्ततेयः॥ त्यक्त्वात्मरूपं विषयांश्च भुंक्ते। ससैजनो गर्धभ एव साक्षात् ॥॥

टीका मूढ़-अज्ञानी अपना आप स्थित हुए हुए आत्मा को नहीं जानता संसार रूपी कुआ में वर्तमान होता है बारंबार जन्मता मरता रहता है जो जन-जो पुरुष आत्मरूप-अपने आप को त्याग करके विषयों को भोगता है सो निश्चय

कारके साक्षात गदहा है मनुष्य नहीं है ॥

सिद्धान्त यह कि जो अज्ञानी आत्माको अपने आप नहीं जानता उसका जन्म मरण नहीं छूटता और जो कोई अपने स्वरूप के आनन्द को छोड़ कर विषय भोग की इच्छा करता है वह गदहा है मनुष्य शरीर होने का सुख नहीं जानता ॥

ज्ञानसाधन को छोड़के कर्मों में लपटाय
जन्म जन्म दुख होत है मुक्ति कभी नहिं पाय

स्मृति - विश्वेश्वरी पद्धति -

अमृतञ्च मृत्युश्चैव द्वयं देहे प्रतिष्ठितं
मृषेण साध्यते मृत्युः सत्येन साध्यते मृतं

टीका - अमृतं मोक्ष वा पुनः - मृत्यु - जन्मना - मरना - संसार बंधन दोनों देह के विषय - शरीर में स्थित हैं मिथ्याकारके - कर्मों का फल जो मिथ्या है तिस कर्म करिके साध्यते मृत्युः - संसार को सिद्ध करता है सत्यकरिके - सत्य स्वरूप आत्मा की प्राप्ति के साधन करिके मोक्ष को सिद्ध करता है ॥

सिद्धान्त यह कि इस मनुष्य शरीर में बन्धन व मोक्ष दोनों हैं जो कोई कर्मों का फल जो बारं बार जन्म मरण का देनेवाला है उसको जान कर

कर्मों में लिपटा रहता है वह संसार को प्राप्त होता है और जो कोई आत्मा जो अपना आप है उसकी प्राप्ति का साधन करता है वह मोक्षरूप आनन्द स्वरूप है - जो कोई ज्ञान साधनको छोड़ कर क- र्मों में लिपटा रहता है जन्मजन्म दुख पाता है कभी मुक्ति नहीं होता है ॥

दोहा सूक्ष्म ब्रह्मजाना नहीं पढ़के चारों वेद
वेदभारकर लदा है बोला भेदाभेद
गर्दभ तिसको जानियो कहैं वशिष्ठकुमार
पूर्ण ब्रह्मजाने बिना छूटै ना संसार

स्मृति वशिष्ठजी

चतुर्वेदोपियो विप्रः सूक्ष्म ब्रह्मनविंदति
वेदभारभरः ज्ञात्वाः सवै ब्राह्मण गर्दभः

टीका चारों वेदसे भी जो ब्राह्मण सूक्ष्म ब्रह्म को नहीं जानताहै वेद के बोझ से लदाहुआ सो ब्राह्मण निश्चय करिके गदहा है यह वशिष्ठ जी की स्मृती का अर्थहै रामचन्द्रको उपदेश किया है ॥

सिद्धान्त यह कि जो पुरुष विद्या पढ़के ब्रह्म को - आत्मा को जो अपना आपहै नहीं जानता सो

गदहाहै जिस तरह गदहा के ऊपर बोझ लदा
रहता है उसको खबर नहीं रहती कि क्या है
उसी तरह जो पुरुष वेद को पढ़ता है और उसके
सुखको नहीं जानता गदहा है जब तक पूरा ब्रह्म
नहीं जानता तब तक संसार न छूटेगा ॥

दो॰ जो कर्मोंको छोड़कर ज्ञान साधनमें आय
ऐसा मानस कौन है जो मुक्ती नहि पाय

अष्टावक्र

श्लो॰ नाना मतं महर्षीणां योगिनां साधुनां तथा
दृष्ट्वा निर्वेद मापन्नः कोन शाम्यति मानवाः

टीका नाना मत- अनेक प्रकारकी रीति गौतम
और जैमनि आदि महर्षियों के और योगी के- पा-
तंजलि के इसी तरह साधू के - साधना करने वालों
के बहुत तरह के मत देखकरके निर्वेद- वैराग्य
को प्राप्त हुआ हुआ कोनसा मनुष्य नहीं शान्त होता

सिद्धान्त यह कि जो एक रीति सब किसी की
नहीं है कोई कर्म कोई योग कोई साधना करता
है और एक से दूसरे की रीति विपरीत है सो सब
प्रकार छोड़ कर वैराग्य जो कोई करता है सोई शा
न्त होता है- मुक्त होता है- जो कोई सब साधना

को त्याग कर ज्ञान का साधन करता है वही मुक्त होता है क्योंकि कई मत हैं और एक दूसरे के विपरीत है तब किस को ग्रहण करे किस को छोड़े इस लिये सब की रीति को छोड़ना ज्ञान को आसरा करना अच्छा है ॥

सो॰ सर्व शीव मंत्र जपो करके अर्थ विचार
शिवसे अन्य किंचित नहीं कहें महेश पुकार

शिवगीता

श्लो॰ न कालः पंच भूतानि न दिशो विदिशश्चनः
मदन्यन्नास्ति यत्किंचित तदावर्तेह मेकलः

टीका भूत-भविष्यत-वर्तमान-तीनों काल नहीं है-आकाश-वायु-तेज-जल-पृथिवी पांच भूत नहीं है-पूरब-दक्खिन-पच्छिम-उत्तर चारों दिशा नहीं है-ईशान-अग्नि-वायव्य-नैऋत्य-चारों विदिशा नहीं है-यत्किंचित्-जो कुछ थोड़ा अज्ञान करके दिखलाई पड़ता है मेरे सिवाय और कुछ नहीं है तिसीतें हम अकेले वर्तमान हैं शिवगीता में यह प्रमाण है ॥

सिद्धान्त यह कि जो कुछ है पूर्ण ब्रह्म है सिवाय ब्रह्म के तीन काल पांच भूत चारों दिशा चारों

विदिशा कुछ नहींहैं ॥

दो. सिद्धान्त सारे वेदका शिवसे भिन्न न कोे
श्रुतिस्मृति यह कहतहैं निश्चे जानो सो

स्मृति-ब्रह्म गीता

श्लो ॰ वेदार्थ परमाद्वैतं नेतरत्सुर पुंगव:
नोचेद वेदमे मूर्द्धा पतिष्यति न संशय:

श्रुति-शंकरानंदी

श्लो ॐ एको रुद्रो ना द्वितीयाय तस्थु: । एको
देवो नारायणा: इत्यादि श्रुते: ॥ नारा-
यण उपनिषद-

॰ टीका हे सुर पुंगव- देवताओं के सरदार इ
न्द्र- वेदका अर्थ उत्तम अद्वितीय है- नेतरत-
और अनेक भेद अर्थ नहीं है- चेतनो- जो ऐसा
अद्वितीय अर्थ नहो तो इसी सभा के विषय शिर
मेरा गिरजाय इसमें कुछ संशय नहींहे ॥ यह
ब्रह्माजीने ब्रह्म गीता में कहा है ॥

ॐ टीका एक रुद्र हैं जिसके सकाशसे दूसरा
नहींहे -एको सजातीय- विजातीय स्वगत भेद से
रहित देव- स्वयं प्रकाश नारायणं नराणां आ
यनं- जितने नर हैं तिनका आयन- घर- अधि-

स्थान हैं- यह अर्थ श्रुति का है।

सिद्धांत यह कि श्रुति स्मृति से निश्चय होता है कि अद्वितीय स्वयं प्रकाश सर्वका अधिष्ठान एक शिव ब्रह्म हैं और सर्व अध्यस्त भ्रम है जैसे रज्जु में सर्प ॥

सो॰ यह ज्ञान कथा रची ईश्वर की खेलवार
शुद्ध बुद्धि एकाग्र चित गुरु सहायता सार

विज्ञान नौका

श्लो॰ दयालुं गुरुं ब्रह्म निष्ठं प्रशान्तं। समारा
ध्य भक्त्या विचार्य स्वरूपं ॥

टीका गुरु को- कैसे गुरु- दयालु- जो कोई संसार रूपी दुख से दुखी है तिस मुमुक्षु पर दया करने वाले हैं और ब्रह्म निष्ठ हैं और शान्त आदि साधन करके युक्त हैं तिस गुरु को भक्ति करके भले प्रकार सेवा करके- श्रवण- मनन- निदिध्यासन करके जिस तत्त्वको- जिस स्वरूप को प्राप्त होता है- विद्वान- कैसा स्वरूप है अक्षुब्ध है पूरन है नाश से रहित है सो निश्चय करके मैं हूं-

सिद्धान्त यह कि दयालु ब्रह्मनिष्ठ शान्ति आदि से युक्त गुरु को भक्ति व सेवा करके विद्वान

जिस स्वरूप को प्राप्त होता है सो मैं हूं-गुरुकी
कृपा से प्राप्ति स्वरूप की होती है-यह स्मृति
आचार्य की है ॥

दो॰ इस विधि कंथ विचार जो पावे पार संसार
यह ज्ञान कथा रची विद्वज्जन की रवेलवार

शिष्य प्रश्न

दो॰ यह ज्ञान अद्भुत कह्यो साधन कह्यो अनूप
अब अभ्यास किंचित कहो दृढ़ता होय स्वरूप

अर्थ दोहा

हे भगवन् ज्ञान साधन बहुत अच्छा आपने क
हा अब अभ्यास को कहिये जिसमें स्वरूप की
दृढ़ता होय ॥

गुरु उत्तर

दो॰ सर्व अभ्यास को छोड़के अहं ब्रह्म मन में धार
इस अभ्यास से पाइये तुरिया जगत अधार

अर्थ दोहा

जितने और अभ्यास हैं उन सब अभ्यासों को छो
ड़कर-अहं ब्रह्म-मैं ब्रह्म हूं-इस महावाक्य के
अभ्यास को मन में धारण करो क्योंकि इस अभ्या
स के करने से तुरिया जो जगत का आधार है-जाग्रत

जिसमें अभ्यस्त-ठहरा है-प्राप्त होता है ॥

विज्ञान नौका

श्लो० अहं ब्रह्म वृत्त्येक गम्यं तुरीयं

टीका मैं ब्रह्महूं-इस वृत्ति के अभ्यास क रके सजातीय विजातीय स्वगत भेद से रहित तु रिया ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥

दो० कर्मजोग अरु ध्यानजोग कोजानत नाहींजो
ज्ञान गुरूसे जानकर तत्पर होवे सो
मुक्ती तिसको होत है भगवत कहैं पुकार
ऐसी मुक्ती होन से बहुरि नहो संसार

भगवतगीता

श्लो० अन्येत्वेव मजानंतः श्रुत्वान्येभ्य उपासते
तेऽपि चातितरं त्येव मृत्युं श्रुति परायणाः

टीका और जो पुरुष इस प्रकार को-कर्मध्यानयोग को नहीं जानता-अन्येभ्य-गुरू के सकाशते श्रवण करके उपासता है-अ-भ्यास करता है-चपुनः निश्चय करके सो पु-रुष श्रुति परायण हुआ हुआ मृत्यु को संसारको अति करके तरजाता है-जन्म मरण से रहित होजाता है ॥

सिद्धान्त यह कि मैं ब्रह्म हूं ऐसा अभ्यास करके आपही आप ब्रह्मरूप है और सर्व भ्रम दूर होजाता है और जो कोई कर्म ध्यान योग नहीं जानता गुरु के वाक्य में विश्वास कर के मैं ब्रह्म हूं ऐसा अभ्यास करता है वह फिर संसार को नहीं प्राप्त होता मुक्त होजाता है ॥

शिष्य प्रश्न

साधन फल अरु ज्ञानको लीन्हा हृदये धार
जीव ईश्वर की एकता भगवन् कहो निर्धार

टीका साधन और फल और ज्ञानको समझ लिया जीव और ईश्वरकी एकताको कि किस प्रकार एक है कृपा करके कहिये ॥

गुरु उत्तर

जेतो बूंद समुद्र कहावे। काहूके मन सांच न आवे
जेतो बूंद कहै मै पानी। माने सब ज्ञानी अज्ञानी
तैसे जीव ईस नहि होई। ब्रह्म बिना किंचित नहि
जीवकी जीवत छोड़के ईश्वर की ईश्वरत्व
पीछे एको रहत है पूर्ण ब्रह्म चित सत्य

श्रुती तत्वबोध

कार्योपाधिरयंजीवः कारणोपाधिरीश्वरः

कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोवशिष्यते- इत्यादिश्रुतेः॥

टीका कार्य उपाधि की योग्यता करके यह आत्मा जीवहै कारण उपाधि की योग्यता करके यह आत्मा ईश्वर है कार्य कारण तिस दोनों उपाधिको त्याग करके पूर्ण चैतन्य ब्रह्म बाकी रहता है ॥

सिद्धान्त यह कि कार्य और कारण दोनोंको छोड़ने से एक सत चित आनंद ब्रह्म जिसमें सब अध्यस्त है बाकी रहताहै जिस प्रकार समुद्र व बूंद कि समुद्र कारण है व बूंद उसका कार्यहै- उसी समुद्र से निकला है दोनों का पानी एकहै बूंद समुद्र और समुद्र बूंद नहीं बन सता और असलमें दोनों पानी है समुद्र व बूंद केवल कहने मात्र है इस तरह श्रुतीसे निश्चय होता है कि जीव ईश्वर दोनों ब्रह्म हैं ॥

दो· इसबिधिएको ब्रह्म है किंचित दूजा नाहि
भेदोपाधी कल्पना किंचित वस्तू नाहि

स्मृती आचार्य

श्लो यथाकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः

न भेदभिन्नवज्ञाति तन्नाशादेकवद्भवेत्

दृष्टान्त

टीका जैसे आकाश अनेक उपाधि- घट मठ आदि उपाधिको प्राप्त हुआ हुआ व्यापक है तिस उपाधिके भेदसे आकाश भिन्नभिन्न की न्याईं जान पड़ताहै उस उपाधिके नाश होनेसे - जब घड़ा टूट जाताहै व मकान गिर जाता है वही आकाश एक की न्याईं होजाता है ॥

दार्ष्टान्त

वैसे निश्चय करके हृषीकेश- ईश्वर- ब्रह्म अनेक चराचर शरीरोंके उपाधिको प्राप्त हुआ हुआ व्यापकहै तिस अनेक शरीरों के भेद से अलग अलग की तरह जाना जाता है उस के नाश से- ज्ञान करके एककी तरह होताहै-

सिद्धान्त यह कि जैसे आकाश जैसा का तै- सा रहता है न दो होजाता है न एक होता है तै ब्रह्म ऐसा है अज्ञानसे जीव ईश्वर शरीर अह सब जान पड़तेहैं ज्ञान होनेसे एक ब्रह्म रहता है केवल ज्ञान अज्ञान से एक व दो- ब्रह्म व जगत है नहींतो पूर्ण एक चैतन्य स्वरूप ब्रह्म

हृषीक इन्द्रियों कोकहतेहैं ईश ईश्वर को कहतेहैं इन्द्रियों को सत्ता स्फूर्ति देनेसे परमात्माको हृषीकेश कहते हैं सत्ता- इन्द्रियों का होना स्फूर्ति यथा इन्द्रियोंका भासित होना - सत्ता स्थिती को और स्फूर्ति प्रकाश को कहतेहैं-

दो॰ जैसे स्वप्ना रैनका तैसे यह संसार ।
नींद गये किंचित नहीं ऊंच नीच व्यवहार
तैसे सब संसार यह स्वप्ने तुल्य विचार
ज्ञानभये किंचित नहीं जीव ईश्वर व्यवहार

आत्मबोध

श्लो॰ संसारः स्वप्न तुल्योहि राग द्वेषादि संकुलः
स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधे सत्यवद्भवेत

टीका संसार रागद्वेष आदि जुगुत स्वप्न की तरह है- स्वकाले - निद्राकाल के बिषय सत्य की तरह जान पड़ता है- प्रबोधे- जागृत के विषय असत्य - मिथ्या की तरह प्रतीत होताहे

दृष्टांत

जैसे स्वप्न निद्राकाल के विषय सत्य की तरह जान पड़ता है और जागृत के विषय असत्य की तरह होता है

द्रष्टांत

जैसे संसार राग द्वेष से युक्त- स्वकाले- अज्ञान काल के विषय सत्यकी तरह प्रतीत होताहै और ज्ञानकालके विषय मिथ्याकी तरह होजाताहै॥

सिद्धान्त यहहकि जैसे स्वप्न कोई चीज़ नहींहै तैसे जगत भी कोई चीज़ नहींहै भ्रम करके सब जान पडता है जब भरम दूर होजाता है तब कोई दूसरी वस्तु नहीं जान पडती ॥

दो॰ कथा ज्ञान विचार कर विषय पराय ण जो
कूकर तिसको जानियो वांत खातहै सो

महाभारत

श्लो॰ येयथावांत मश्नंति श्वालानित्यमभूतये
एवंतेवांत मश्नंति स्ववीर्यस्योपभोजनात्

टीका जो पुरुष वेदांत शास्त्रको विचार करके वैराग्यको प्राप्त होकर फिर विषय परा- यण - विषयों के भोगों की इच्छा करता है कुत्ता है जैसे कुत्ता वमनको खाताहै इसी तरह सो पुरुष वांतिको खाता है- अपने बीज का बल के भोजन करने ते नियम करके संसार को प्राप्त होता है ॥

सिद्धान्त यह कि जो पुरुष पूर्व सब भोगों को त्याग करके फिर भोगकी इच्छा करताहै कुत्ताहै जिस तरह कुत्ता वमन करके फिर खाता है उसी तरह वह भोगों को त्याग करके फिर भोगता है- वमन करके फिर खाता है और अपना बीज वथा बल- बैराग जो साधन ज्ञान का है भोजन करने से- बैराग्य के त्याग करने से विखयों के भोगनेसे ज्ञान को न प्राप्त होकर नियम करके जन्म मरन में पड़ा रहताहै मुक्त नहीं होता ॥

दो· कार्य अल्पज्ञ उपाधिको वाच्य जीवका जान
सतचित आनंद ब्रह्मको लक्ष जीव का मान
कारण सर्वज्ञ औसको वाच्य ईस का ठान
सतचित आनंद ब्रह्मको लक्ष ईस का जान
वाच वाच को छोड़कर लक्ष लक्ष करले एक
इस विधि एको ब्रह्महै जीव ईस भ्रम नेक

स्मृती आचार्य

श्लो कार्यकारण वाच्यांशौ जीवेश्वरयोर्जहच्चतौ
अजहच्चित्तयोर्लक्ष्यौ चिदंशावेकरूपिणौ

टीका कार्य कारण जीव ईश्वर दोनों के वा च्य अंश तिन दोनोंको जहत - त्याग- चैतन्यांश

जीव ईश्वर दोनों को अजहत- ग्रहण कर देने न्यांश दोनों के रूप एक हैं ॥

सिद्धान्त यह कि कार्य जो जीव का वाच्य है और कारण जो ईश्वर का वाच्य है दोनों के वाच्य को छोड़कर सत्चित आनंद जो जीव ईश्वर दोनों का लक्ष्य है तिसको ग्रहण करने से केवल एक पूर्ण ब्रह्म रहता है । जहतलक्षणा- अजहत लक्षणा- जहत अजहत लक्षणा तीन तरह की लक्षणा हैं सो जहत अजहत लक्षणा ग्रहण करना चाहिये प्रसंगगत तीनो लक्षणा की व्याख्या भी लिखी जाती है। तत्वंअसि- तत् पद ईश्वर जो है- त्वंअसि- हे जीव तू है ॥

शंका

तत्पद ईश्वर जो है कारण सर्वज्ञ परोक्ष है त्वं पद जीव जो है कार्य अल्पज्ञ अपरोक्ष है सो कार्य कारण व अल्पज्ञ- सर्वज्ञ व अपरोक्ष- परोक्ष एक नहीं हो सक्ता तब ईश्वर जीव कैसे है

उदाहरण

जहतलक्षणा- अजहतलक्षणा- जहत अजहत लक्षणा तीन तरह की लक्षणा हैं- जहत लक्षणा

उसको कहते हैं जैसे किसी पुरुषने किसी शिष्यको कहा कि गंगायां घोषः दधि आनय- गंगाके गांवसे दधि लाओ उसने जायकर देखा कि गंगा में कोई गांव नहीं होता तब विचार किया कि गंगा के तीर में किनारे पर गांव है वहां से जाकर दही लाया उस कहनेको त्याग करके तीर वा किनारा अपनी तरफ़ से निश्चित किया तब दही लाया- सो इस प्रकार कोई चीज़ अपनी तरफ़ से निश्चित करनेके योग्य नहीं कि एक को त्यागकर दूसरी वस्तु को निश्चित करे- तत्वंअसि महा वाक्य में जहत लक्षणा से अर्थ नहीं मिलता - अजहत लक्षणा उसको कहते हैं जैसे किसी पुरुष ने किसी से कहा- श्वेतो धावति- सफ़ेद दौड़ाजाता है उसने सोचा कि सफ़ेद एक रंग है वह किस प्रकार दौड़ सक्ता है तब विचार किया और समझा कि सफ़ेद घोड़ा दौड़ाजाता है- उसके कहने को भी ग्रहण किया और उसी के अनुसार घोड़ा अपनी बुद्धि से निकाला- इस महा वाक्य में ऐसा नहीं होसक्ता कि जीव ईश्वर दोनों को क़ायम रखकर तीसरी वस्तु अपनी ओर से मिलादे- जहत अजहत लक्षणा

उसको कहते हैं कि जैसे किसी पुरुषने देवदत्त
नामी एक मनुष्य को एक नगर में भीख मांगते
देखा कुछ काल बीते उसी मनुष्य को दूसरे नगर
में उसीने राजा बना हुआ राज करते देखा अचंभ
हुआ कि इसको हम क्या समझें जो राजा समझें
तो भिक्षुक नहीं बनसक्ता और यदि भिक्षुक समझें
तो राजा नहीं होसक्ता और जो उसे भिक्षुक कहें
तो लोग अनाड़ी करके हम को निकाल देंगे परंतु
यह वही मनुष्य है जिसको हमने मांगते देखाथा
तब उसने विचार किया और समझा कि देवदत्त
जो है वही वहां भीख मांगता था यहां राजा बन
कर राज्य करता है यह देवदत्त है दूसरा नहीं
है- जिस प्रकार देवदत्त का नाम व स्वरूप ग्रा-
ह्य रक्खा भीख मांगना व राज करना दो धर्म
उस का त्याग दिया तैसे जीव का कार्य अल्पज्ञ
अपरोक्ष और ईश्वर का कारण सर्वज्ञ परोक्ष
वाच्य वाच्यको त्याग करके सतचित आनंद ब्रह्म
लक्ष दोनों का ग्रहण करके एक ब्रह्मरूप दोनों
को जाने क्योंकि एक ब्रह्म का चिदाभास शुद्धमें
और मलीन में दोनों में है उसी का नाम ईश्वर

वजीव है दोनों ब्रह्म में अध्यस्त हैं ॥

इति टीका भावार्थ ज्ञान प्रकर्ण
ज्ञान कथायां
प्रथमं प्रकर्ण
संपूर्ण

श्रीगणेशायनमः

हरि ओं तत्स द्ब्रह्मणे नमः

अथ असुर निर्णयप्रकर्ण

दो॰ ज्ञानवारतामें चतुर वृती रहितजो है
प्रीत करे बहु भोगमें तम अज्ञानी सो
बार बार जन्मे मरे मुक्ति कभी नहिं हु
राजयोग के अन्तमें लिखा आचारज

स्रुती - अपरोक्ष अनुभूती

श्लो॰ कुशला ब्रह्मवार्त्तायां वृत्तिहीनाः सुरा
तेप्यज्ञानतमानूनं पुनरायान्तियान्ति

टीका ब्रह्मवार्त्ता में कुशल - चतु
वृत्तिहीन नेष्ठा से रहित है भले प्रकार
विषयों के भोग में प्रीत रखता है सो
निश्चय करके अज्ञानतम - अज्ञानरू
करके आच्छादित है भलेप्रकार बारम
ताजाता है - जन्मता मरता है कभीमुक्त

सिद्धान्त यह कि जो कोई ज्ञानकी
चतुर है और ज्ञानमें नेष्ठा स्थिती नहीं

पुरुष वारम्वार जन्म मरण को प्राप्त होकर संसा
र रूपी दुःख को भोगताहै कभी मुक्त नहीं होता॥

दो   अधिकारी कथा ज्ञानका देवभूलको जान
असुर मुक्ति पावै नहीं करे बहुत व्याख्यान

भगवद् गीता

श्लो   दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबंधायासुरीमताति २
द्वौभूत सर्गौलोकेस्मिन् दैव आसुर एवच ।
दैवो विस्तरसः प्रोक्त आसुरं पार्थमेश्रृणु ॥ ३॥
प्रवृत्तिंच निवृत्तिंच जनानविदुरासुराः ।
नशौचं नापिचाचारो नसत्यंतेषु विद्यते ।४।
अनेकचित्तविभ्रांत मोहजाल समावृताः ।
प्रशक्ता कामभोगेषु पतंति नरके शुचौ ॥५॥
इत्यादि श्रीभगवद्गीतायां असुरलक्षणं ॥

टीका श्लोक २ की

दैवी सम्पत्ति- देवताओं का ऐश्वर्य मुक्तिके अर्थ
आसुरीमत बंधनके अर्थहै-

सिद्धान्त यह कि इस स्मृती से निश्चय होताहै कि
जो कोई देवतों का धर्म कर्म जैसा शास्त्र में लिखा
है उसके अनुसार करता है मुक्त होताहै और अ-
सुर का धर्म कर्म जो है उस प्रकार जो करता है

बंध होताहै - जन्म मरण में पड़ा रहताहै - प्रयोजन यह कि चतुष्टय साधन से रहित असुर पुरुष है ज्ञानकथा का अधिकारी नहींहै ॥

टीका श्लोक ३ की

हे अर्जुन निश्चय करके इस लोकमें दो प्रकार के मनुष्य पैदा हुएहैं देवता - अपुनः असुर - देवतों को विस्तार करके कहाहै असुर को मेरे सकाश से श्रवण करो -

सिद्धान्त यह कि इस लोकमें दो प्रकार के मनुष्य हैं एक देवता दूसरे असुर - देवता के लक्षण पहले वर्णन होचुके हैं अब असुर के लक्षण कहे जाते हैं उसको सुनो ॥

टीका श्लोक ४ की

प्रवृत्ति को अपुनः निवृत्ति को असुर जन नहीं जानते तेषु - तिस असुरजनके विषय शौच - आचार सत्य न विद्यते - नहीं दिखलाई देताहै कर्ममें प्रवृत्त होना - उसको प्रवृत्ति और कर्म में प्रवृत्त न होना उसको निवृत्ति कहते हैं -

सिद्धान्त यह कि जिसकी प्रवृत्ति से मुक्ति होती है और जिसकी न प्रवृत्ति से मुक्ति होतीहै असुरजन

नहीं जानते और शौच और अपने वर्णाश्रम का धर्म व सच बोलना असुर जनमें नहीं दिखलाई पड़ता

टीका श्लोक ५ को

अनेक चिन्ता करके भरमते हैं अज्ञान रूपीजाल करके भले प्रकार आवृत्त- आच्छादित हैं- वासना व प्रीति करते हैं काम के भोग के विषय पड़ते हैं अशुचि नरक में -

सिद्धान्त यह कि असुरजन अनेक चिन्ता में भरमा करते हैं व आत्मा को नजानकर माया के जाल में पड़े रहते हैं इत्यादि श्रुति करके भी भगवत गीतामें असुर के यह लक्षण लिखे हैं असुर जन के साथ में और असुर जन के ऊपर दया करने में भी दुःख होता है जैसे मंत्री को चोर बच्चे के साथ दया करने से व जड़भरत को हरिन के साथ प्रीति करनेसे व अथर्व दधीचि को इन्द्र के ज्ञान उपदेश करनेसे दुःख हुआहै तैसेही अ- सुर जन से ज्ञानी महा पुरुष को दुःख होताहै परंतु महा पुरुष उसको स्वप्न और इन्द्रजाल की तरह समझते हैं होना न होना दोनों बराबर जानतेहैं कुछ दुःख नहीं करते ॥

चौ॰ मेरे पास असुर एक आया। देवरूप उसे तुरत बनाया

दो॰ मा दुक दैवी संपदा दीन्ही बहुत पसार
मेरे चित्त को मोह लिया करके बहुत पिआर

चौ॰ अत्मामाहिं बहुत वह रहा। बंधु छोड़ मेरा संग गहा।
पढ़ विद्या वह भया ज्ञानी। साधना युक्त बड़ा अभिमानी

दो॰ जैसे बच्चा सिंह का फंसा पुरुष के हाथ
लेंडू नाम क हाय कर मिला भेड़ के साथ
तैसे मेरी संगति छोड़ कर रहा असुरपुर मांह
देवरूप को छोड़ कर मिला असुर में तांह
जैसे मंत्री दया की चोर बचे के साथ
तैसे मेरा मन गया असुर बचे के हाथ
जैसे हुन के प्रीत में दुखी भये जड़भर्थ
तैसे माया बेई में फंसा मेरा मन व्यर्थ
जैसे इन्द्र को उपदेश कर अंगीकरा सराप
सीस कट्या फिर लाया देखा बहुत संताप
बृहदारण्य उपनिषद में लिखया कर परमान
कौतुक अथर्व दधीच का निश्चय करके जान
तैसे असुर के संग में भया बहुत दुख जान
सिर कटने से बच रहा ईश्वर कृपा मान
जैसे स्वप्ने इन्द्रजाल में भया भयो कुछ नांह

तैसेहि माया जानकर रह्यो मगन मन मांह

कारिका मांडूक्य उपनिषद

श्लो अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनंगतः

मध्ये किंचित् प्रदृश्यन्ते तत्रका परिदेवना ६

मनोवृत्ति मयं द्वैतं अद्वैतं परमार्थता

इत्यादि वचनात् ७

टीका श्लोक ६ की

अदर्शनते आकर प्राप्त हुआ फिर अदर्शन को जाता भया मध्य विषय किंचित दिखलाई दिया तिसके विषय क्या दुख कल्पना -

सिद्धान्त यह कि जो पदार्थ पहले नहीं था बीच में होगया पीछे फिर न रहा तिसमें दुख क्या है क्योंकि जो पदार्थ आदि अन्त में नहीं है मध्यमें होना न होना उसका बराबर है उसमें रोना पीटना क्या ॥

टीका श्लोक ७ की

मन की वृत्ति रूप द्वैत है परमार्थ करके अद्वैत है - जितना यह परपंच है केवल मन की कल्पना है नहीं तो वास्तव में एक पूर्ण ब्रह्म है क्योंकि जागृत व स्वप्न दो अवस्था में मन स्थित है तो

संसार व संसार का व्यवहार भी दिखलाई देता है सुषुप्ति अवस्था में मन लीन होजाता है तब कोई प्रपंच नहीं देख पड़ता इसलिये स्मृति से व भी अपने सोचने से जानपड़ता है कि सारा प्रपंच मनोमय है ॥

दो॰ मायाकरिके असुरकी शुभगति कभी न होय
ऐसे निश्चय जानि कर लिखी व्यवस्था सोय
आत्मज्ञान को छोड़कर भोगों में लपटा
सो निश्चय कर असुर है कहे वेद भगटा

श्रुती

असुर्य्या नाम इत्यादि श्रुतेः ॥ ८ ॥

टीका इस श्रुती का अर्थ औरबार ज्ञान प्रकर्ण में लिखा है-

सिद्धान्त यह कि असुर की शुभगति माया कर के नहीं होती जो कोई आत्मज्ञान को छोड़ कर भोगों में लिपटा रहता है सो निश्चय करिके असुर है

सो॰ गुरुशास्त्रका अपमानकर करेजो इच्छीभोग
उलटे मुख पड़े नरक में जन्म जन्म भयो रोग

महाभारत

श्लो॰ देहो ऽ प्रकाशा भूतानां नरकोयं प्रदृश्यते

गृध्यंत एव भावंति गच्छंतिच अमुन्सुखा ९

टीका यह दृश्यमान स्त्री आदिक भूतों का देह प्रकाश से रहित - मांस चर्म रुधिर हड्डी है तिसी तें नरक है - तम रूप नरक है - जो पुरुष स्त्री आदिक की कांक्षा करता है और जतन करके उसको प्राप्त होता है वह पुरुष उलटे मुख नरक में पड़ता है -

सिद्धान्त यह कि जो कोई गुरु और शास्त्र की विद्धी को त्यागके स्त्री आदिक भोगों की प्राप्तिकी कांक्षा करता है व प्राप्त होता है सो निश्चय करके असुचि नरक में जो रुधिर और पीप का है पड़ता है और जन्म जन्म रोगी रहता है क्योंकि यह शरीर सिवाय रुधिर और पीप के दूसरी वस्तु नहीं है यह महाभारत में लिखा है ॥

दो प्रीत काम अरु भोगमें करे रात दिन जो
असुचि नर्क में वह पड़े भगवत कहते सो

भगवत गीता

स्लो प्रशक्ता काम भोगेसु पतंति नरके सुचौ
इत्यादि स्मृते: ॥१०॥

टीका जो कोई काम भोग के विषय प्रशक्त है

भले प्रकार प्रीति रखता है वासना करता है अशुचि नरक में पड़ता है-

सिद्धान्त यह कि भगवत गीता की स्मृती से निश्चय होता है कि जो रात दिन कामना और भोग में प्रीत करता है सो नरक में पड़ता है आसुरी सम्पदा का यही फल है ॥

दो॰ बिन श्रद्धा से जो करे अग्निहोत्र अरु तप
दान स्तोत्र पाठ अरु नमस्कार बहु जप ।
तिसका फल मरके नहीं किंचित इहांन होय
व्यर्थ कष्ट को वह करै भगवत कहते सोय

भगवतगीता

श्लो॰ अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतंच यत्
असदित्युच्यते पार्थ नचतत्प्रेत्यनोइह ११

टीका हे अर्जुन जो पुरुष श्रद्धा से रहित हवन दान-तप-वपुनः स्तोत्र पाठ- नमस्कार-जप करता है- वेदव-विद्यावान असत उसको कहते हैं सत्य नहीं है व्यर्थ कष्ट करता है तिसका किंचित फल मरके अथवा इस लोक में नहीं है-

सिद्धान्त यह कि स्मृती से निश्चय होता है कि जो कोई बिन श्रद्धा से हवन-दान-तप-स्तोत्र पाठ

नमस्कार- जप करता है- व्यर्थ कष्ट उठाता है
तिसका फल इस लोक और परलोक दोनोंमेंनहींहै
शास्त्र आज्ञा छोड़ कर मनके भयो अधीन
कोटकल्प सुखी नहीं सदा दुखी रहैं दीन
मुक्ती कभी न होवे है बार बार संसार
लक्ष चौरासी में बसैं भगवत कहैं पुकार

भगवद्गीता

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्त्तते काम कारतः
न ससिद्धि मवाप्नोति नसुखं न परांगतिं १२
आसुरीं योनि मापन्ना मूढा जन्मनिजन्मनि
माम प्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमांगतिं १३

टीका श्लोक १२ की

जो पुरुष शास्त्र विधि को त्याग करके कामना के वश हुआ २ वर्तता है सो सिद्धिं- अन्तःकरण की शुद्धि को नहीं प्राप्त होता न सुख को न परमगति को- सुख व मुक्ति को नहीं प्राप्त होता-

सिद्धान्त यह कि स्मृतिसे निश्चय होताहै कि जो कोई शास्त्र में जैसा लिखा है उसको छोड़के कामना के वश होकर जैसा मन में आता है कर ता है उसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता सर्वदा

दुखी और दीन रहता है मुक्ति नहीं पाता जन्म मरण में पड़ा रहता है ॥

टीका श्लोक २३ की

हे अर्जुन अज्ञानी मेरेको - आत्माको न प्राप्त होकर जन्म जन्म के विषय आसुरी योनिको - सिंह बाघ आदि योनि को प्राप्त होके तिसके अनंतर तिस आसुरी योनि के पीछे अधम गति - सर्प बिच्छू आदिक योनि को प्राप्त होता है -

सिद्धान्त यह कि स्मृति से निश्चय होता है कि जो कोई शास्त्र को छोड़के मनके आधीन चलता है सो अज्ञानी अपने आपको न जानकर सिंह बाघ आदि आसुरी योनि व सर्प बिच्छू आदि योनि अधम गति को जिससे सब जीवों को दुख होता है - लक्ष चौरासी में भरमता रहता है व दुख भोगता रहता है ॥

दो॰ पतित होयकर ज्ञानसे जाय नर्क में जो
बीस कुलों को स्वर्ग से काढ़ लेजावे सो
यदि सर्व इंद्रियां रोककर ज्ञान नेष्ठी हो ।
बीस कुलों को साथ ले मुक्ती पावे सो ।

विश्वेश्वरी पद्धति

श्लो॰ आरूढ़ पतितो हन्ति दशपूर्वान्दशापरान्
निस्तारयतितानेव यदिसम्यगव्यवस्थित:४५

टीका आरूढ़- संन्यासपूर्वक ज्ञान को प्राप्त हुआ हुआ- पतितो- स्त्री- द्रव्यादिक भोगों की इच्छा करता है व भोगता है- जो सन्यासी वैराग्य करके फिर स्त्री व द्रव्यादिक को ग्रहण करता है दस कुल पहले व दस कुल पिछले को हनन करता है- दुर्गति करता है यदि जो सन्यास के धर्म पूर्वक ज्ञान में स्थित होता है बीस कुलों को भले प्रकार तारता है- अपने साथ मुक्त करलेता है-

सिद्धान्त यह कि जो ज्ञानी वैराग्य करके फिर भोगों की इच्छा करता है बीस कुल को अपने साथ नरक में लेजाता है और जो सर्व इन्द्रियों को रोक कर ज्ञान में स्थित रहता है बीस कुल को अपने साथ मुक्त करलेता है ॥

चौ॰ मातपितादारासुतभाई। बंधरूप मायाबनिआई

दो॰ - इस बंधन में फसातुम अनादिकाल काजान
जन्मजन्म दुख पाया इनके साथ पहिचान
इनमें रक्षक कोई नहीं निश्चय करके ठान

श्लो॰ शरणं नहि मम जननी नपिता नसुता न सो-
दरानान्ये। परमं शरण मिद मेव चरणं मम
मूर्द्धि दैशिकन्यस्तम् ॥ २५ ॥

टीका रक्षा मेरेको माता करके पिता करके
पुत्र करके भाई करके और सम्बंधियों करके नहीं है
मुझको उत्कृष्ट रक्षा निश्चय करके मस्तक के विषय
गुरू के चरण स्थित हैं —

सिद्धान्त यह कि माता पिता-पुत्र-भाई और
संबंधी कोई मेरी रक्षा करनेवाले संसार से नहीं हैं
मेरे सिर में गुरू के चरण जो स्थित हैं वही परम
रक्षा मेरी है- इस संसार से रक्षा करने वाले बंधन
से छुड़ानेवाले केवल गुरु हैं और कोई नहीं है
सब लोग केवल दुख देने वाले हैं ॥

दो॰ जैसे भक्ति देव में तैसे गुरु में हो ।
गुरु देव को एक कर भयो उपासक सो
ज्ञान तिसी को होत है निश्चय करके जान

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः २६

आचार्यवान् पुरुषो वेद इत्यादि श्रुतेः २७

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं । २८

तद्विद्धि प्रणिपातेन इत्यादिस्मृतेः २९

टीका श्रुती २६ की

जिसको देवता के विषय परम भक्तिहै- जैसे देवता की भक्ति तैसे गुरू के विषय भक्ति है तिसके अर्थ उसको गुरू का कहा हुआ अर्थ प्रकाशता है चमत्कार करता है व ज्ञान होता है -

सिद्धान्त यह कि जो कोई गुरू देवता को एक जानकर भक्ति करता है तिसी को गुरू की कृपा से ज्ञान होता है ॥

टीका श्रुती २७ की

इस श्रुति से निश्चय होता है कि गुरू शिक्षित जो पुरुष है ज्ञान पायकर आत्मा को जानता है ॥

टीका स्मृती २८ की

इस स्मृति का अर्थ ···· व्याख्या सहित ज्ञान

प्रकर्ण में लिखा है- श्रद्धावाला पुरुष ज्ञानको पाता है ॥

टीका स्मृती १८ की

इस स्मृति से निश्चय होता है कि ज्ञानकोजान गुरुको भले प्रकार दंडवत करने करके -

सिद्धान्त यह कि श्रुति स्मृति से निश्चय होताहै कि सिवाय गुरु के और किसी प्रकार ज्ञान नहीं होता ज्ञान का साधन केवल गुरु हैं गुरु की कृपा से ज्ञान में प्रवृति और संसार से निवृति होती है ॥

दो. चतुराई भोग प्रकृ मान अर्थ पढ़े वेद को जो
मुक्ती उसको है नहीं निश्चय जानो सो ।
अंतकाल में दुष्ट को वेद छोड़ कर जाय
जैसे पंछी पींजरा छोड़े सुख को पाय ।

महाभारत

श्लो० न छंदांसि वृजिनं तारयन्ति मायाविनं मा
या वर्त्तमानं ॥ छंदांस्येनं प्रजहत्यन्तका
ले नीडं सुकुंता इव जात पक्षाः ॥२०॥
आत्मज्ञस्यापि यस्यस्याद्धानोपादानतायदि
नमोक्षार्हः सविज्ञेयो वांताशी ब्रह्मणो ध्रुवम२१
इति महाभारते ।

टीका श्लोक २० की

पापी को- जो चतुराई और भोगमान के अर्थ वेद को पढ़ता है तिस धर्मनास्तिक को वेद नहीं तारता- नहीं रक्षा करता वह धर्म नास्तिक कैसा है मायावी है- धर्मध्वज है- जो धर्म का झंडा खड़ा किये है व धर्म नहीं करता और माया में वर्तमान है- संसार के जो भोग हैं उनकी इच्छा और भोग में पड़ा रहता है तिस धर्मनास्तिक की रक्षा वेद नहीं करते- इस पापी- धर्मनास्तिक को वेद अन्त काल के विषय त्यागते हैं जैसे पर जमी हुई चिड़ियां खोन्था को छोड़ देती हैं- जब तक चिड़ियों के बच्चों के पर नहीं जमता तब तक जिस खोन्था में पैदा होती हैं रहती हैं पर के जमने के पीछे उस खोन्था से वह बच्चा उड़ जाता है-

सिद्धान्त यह कि जो कोई चतुराई व भोग व मान के अर्थ वेद को पढ़ता है ज्ञान के लिये नहीं पढ़ता ऐसे धर्मनास्तिक धर्मध्वज माया में वर्त्तमान को वेद रक्षा नहीं करता अन्तकाल में जैसे चिड़ियां खोन्था में मैला छोड़कर उड़ जाती हैं तैसे वेद उस धर्मनास्तिक को भोग देकर त्याग

देते हैं- मुक्ति उसकी नहीं होती जन्म मरण में पड़ा रहता है इस प्रकार महाभारत में लिखा है॥

टीका श्लोक २१ की

यदि जिस आत्मज्ञानी को त्याग ग्रहण होता है सो ज्ञानी मोक्ष होने के योग्य न जान निश्चय कर के वांतासी ब्राह्मण है- ब्राह्मण बमन खाता है- सिद्धान्त यह कि जो कोई ज्ञानी होकर फिर त्याग ग्रहण करता है उसकी मुक्ति नहीं होती एक बार एक वस्तु छोड़ कर फिर लेता है तो मानो बमन करके फिर खाता है॥

दो॰ इस्त्री आदिक भोग में जो सुख प्राप्त हो।
दुख का कारण यही है निश्चै जानो सो।
आदि अन्त में है नहीं सब को अनुभव होय
ज्ञानी प्रीति नहीं करै भगवत कहते सोय

भगवद्गीता

श्लो॰ ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःख योनय एव ते
आद्यन्तवंतः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः २२

टीका हि- निश्चय करके जो इन्द्रिय और विषय के योग करके उत्पन्न हुए भोग हैं- दुःख योनि- दुख के कारण हैं- हे अर्जुन निश्चय करके

ते भोग - आदि अन्त वाले हैं - उत्पत्ति नाशवाले
हैं इस भोग के विषय ज्ञानी नहीं रमन करते -
इच्छा व प्रीति नहीं करते -

सिद्धान्त यह कि स्त्री आदिक भोगमें जो सुख
जान पड़ता है सो दुख का कारण है क्योंकि वह
सुख पहले नहीं रहता बीच में कुछ होता है
फिर पीछे नाश होजाता है जब नाश होजाता है
तब बड़ा दुख होता है इस हेतु से ज्ञानी पुरुष
उसकी ओर नहीं देखते क्योंकि यह अनित्य है
सदा नहीं रहता और ज्ञानी आत्मानंद जो नित्य
है तिस करके तृप्त हैं ॥

दो   काम क्रोध के वेग को सहै यतन कर जो
योगी तिसको जानियो सुखी जानियो सो
दुख पर मिलवे नहीं क्रोध वेग छुटजाय
होय रूपी जे करें काम वेग नहि आय

भगवद्गीता

श्लो   शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीर विमोक्षणात्
काम क्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः २३

टीका   जो पुरुष इस लोक के विषय शरीर
के त्यागने से पहले काम क्रोध के उत्पन्न हुए

वेग को संहारने को समर्थ है - जब कामना किसी वस्तु की होती है और क्रोध आता है पहले रोक लेता है सो पुरुष सुखी है -

सिद्धान्त यह कि इस संसार में जो कोई काम क्रोध के उत्पन्न होने से प्रथम उसके वेग को यत्न करके रोक लेता है सो मनुष्य योगी व सुखी है - पहले जब किसी वस्तु का ख़्याल करता है तब इच्छा उत्पन्न होती है और उसके पीछे जब इच्छा के अनुसार काम नहीं होता या उसके नष्ट होने का ख़्याल करता है तब क्रोध उत्पन्न होता है सो जो कोई आगे पीछे का कुछ ख़्याल नहीं करता है उसको इच्छा और क्रोध दोनों नहीं होता - जो कोई संसार की चीज़ों में दोष दृष्टि करता है - सब चीज़ को अनित्य समझकर उसको दुख का कारण जानता है उस मनुष्य को इच्छा नहीं होती और जब इच्छा किसी वस्तु की न हुई तो क्रोध नहीं आता क्योंकि जिस वस्तु की इच्छा होती है उसके लाभ हानि के सोचने में क्रोध आता है वही मनुष्य सुखी रहता है और योगी है इस ज्ञानकथा के अर्थ के विचारने का वही मनुष्य

अधिकारी है जो कोई दैवी सम्पत्ति चतुष्टय साधन से ......युक्त है और जो कोई असुर सम्पत्ति चतुष्टय साधन से रहित है- संसार की वासना में लिपटा है वह मनुष्य अधिकारी ज्ञान कथा का नहीं ॥

इति टीका भावार्थ असुर निर्णय प्रकरण ज्ञान कथायां द्वितीयं
प्रकर्णं समाप्तं
श्रीशिव

श्री

हरिॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥ = ॥

अथ सीताराम प्रकर्ण प्रारम्भः

चौ० सियाराम मय सब जग जानो। भरम भेद किंचित नहिं मानो ॥
स्मृति श्रुति का सार विचारो। भरम छोड़ हृदय यह धारो ॥

महाभारत

श्लो० दोषो महानत्र विभेद योगे अनादि योगे
न भवंति पुंसः ॥१॥ इत्यादि स्मृतेः ॥
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपं ईयते २ इत्यादि श्रुतेः

टीका श्लोक १ की

दोष बड़ा इस भेद योग के विषय होता है - माया के योग करिके पूरण परमात्मा अनेक रूप होते भये -

सिद्धान्त यह कि इस स्मृति से निश्चय होता है कि आत्मा को पूरण न जान कर जगत को भिन्न जानना इस भेद करने में बड़ा दोष होता है क्योंकि परमात्मा आपही अनेक रूप होते भये

टीका श्लोक २ की

इन्द्र- आत्मा माया करके पुरुरूपं- अनेकरूप ईयते- होतेभये-

सिद्धान्त यह कि इस श्रुति से निश्चय होता है कि आत्मा आपही माया करके बहुतरूप होते भये॥ श्रुति व स्मृति से विदित होता है कि परमात्मा आपही माया की योग्यता करके सर्व चराचर अनेकरूप होते भये इसमें भेद करना-जगत को भिन्न २ जानना - इससे दो प्रकार का दोष होता है एक यह कि वेद का अर्थ अद्वितीय है-एक है- द्वय कहने से एकता जाती रहती है द्वय कहना वेद का हृदय फाड़ना है दूसरा यह कि भेद अज्ञान करके सर्वदा से चला आता है उसको अपूर्व करना यह दोष होता है - पहले नहीं था अब स्थित हुआ है जो अब भेद कहा जाता है - मनुष्य शरीर को चाहिये कि एक सीताराम मय सब जगत को जाने क्योंकि भेद सदा अनेक जन्म मे होता रहा एक पूर्ण ब्रह्म निश्चय होना भ्रम भेद कुछ न मानना मनुष्य शरीर होने का यही फलहै

चौ॰ जब कर बिचार सीतालयभई। तब पुरुबोधरामयकरही

दो० सत चित आनंद राम को पूरण कर के जान
श्रुति स्मृति यह कहत हैं निश्चय कर परमान
जैसे भूषण स्वर्ण में पट सूत में हो ।५।
तैसे सर्व संसार में बिना राम नहिं को ।

शिवगीता

श्लो० मम स्वरूप ज्ञानेन यदा विद्या प्रणश्यति
तदैक एव वर्तेहं मनो वाचा मगोचरः ३
इत्यादि स्मृतेः।

श्रुति-छान्दोग्य उपनिषद

एक मेवा द्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किं
चन। इत्यादि श्रुतेः ॥४॥

टीका श्लोक ३ की

मम स्वरूप ज्ञानेन-मेरे आत्मस्वरूप के ज्ञान
करके जिस काल के विषय अविद्या माया नाश
होती है तिस काल के विषय सजातीय विजातीय
स्वगत भेद से रहित मैं अकेला-एक आत्मा व-
र्तमान होता हों कैसा आत्मा है मन बानी का
अदृष्य है-न मन में आता है न कहा जाता है
कि कैसा है

सिद्धान्त यह कि जिस समय आत्मा के स्वरू

जानने से माया नाश होती है उस समय एक आत्मा पूर्ण दिखलाई देता है सिवाय आत्मा के और कुछ नहीं रहता ऐसा स्मृति से निश्चय होता है ॥

टीका श्रुति ५ वी

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म- एकं एवा द्वितीयं- सजातीय व विजातीय स्वगत भेद से रहित ब्रह्म है- किंचित् नाना- अनेक सो नहीं है-

सिद्धान्त यह कि इस श्रुति से निश्चय होता है कि भेद से रहित सर्व एक ब्रह्म है दूसरा नहीं है स्मृति श्रुति से प्रगट है कि जब आत्मा के स्वरूप के विचार करने- जानने से सीता- माया लय हो जाती है तब एक राम- आत्मा बाक़ी रहजाता है क्योंकि ब्रह्म अधिष्ठान और प्रकृति अध्यस्थ है विचार करने से अध्यस्त दूर होगया और अधिष्ठान बाक़ी रहा जैसे रस्सी में सर्प इस प्रकार ब्रह्म में माया अध्यस्त है विचार करने से माया लय होजाती है तब पूर्ण ब्रह्म रहजाता है जैसे कपड़ा में धागा गहना में सोना तैसे सर्व चराचर में ब्रह्म पूर्ण है ॥

चौ॰ पूरन राम आपको जानो । तत्वमसीश्रुतीयहमानो।
पूरन ब्रह्म आपको जानो । अयं आत्माब्रह्मबखानो।
अहं ब्रह्मास्मि करो आधार। संसार सागर से उतरो पार

दो॰ गुरु श्रुति के ज्ञानसे शीघ्र होवे ज्ञान ॥
श्रुतीस्मृती यह कहत हैं करियेनित परमान

उपदेश

तत्वमसि-तत् पद ईश्वर त्वं पद जीव- असिपद दोनों की एकता ब्रह्म- हे जीव ईश्वर तुम हे जीव की जीवत्व ईश्वर की ईश्वरत्व छोड़कर ब्रह्म जो है सो तुम हो। इसका अर्थ ब्यौरेवार ज्ञानप्रकर्णों में लिखा है यह महावाक्य सामवेद का है-

अयं आत्माब्रह्म- यह आत्मा जो अपना आप है ब्रह्म है यह सो श्रुती उपदेश रूप हैं- यह महा वाक्य अथर्वन वेद का है ॥

अनभव

अहं ब्रह्मास्मि-मैं ब्रह्म हूं- उपदेश ग्रहणा के पीछे यह अनभव- दृढ़ निश्चय हुआ कि गुरु व वेद जो उपदेश करते हैं सो मैं ब्रह्म हूं - यह श्रुती अनभव रूप है- यह महावाक्य यजुर्वेद का है॥

स्मृति

ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधि ग-

च्छति ॥५॥ इत्यादि स्मृतेः

एवं विदुः अमृतास्ते भवन्ति ॥६॥ ब्रह्मै

वसन ब्रह्माप्यति ॥७॥ इत्यादि श्रुतेः

टीका स्मृति ५ की

ज्ञानं लब्ध्वा - ज्ञान को पाकर परम शान्ति - मुक्ति को शीघ्र प्राप्त होता है - सिद्धान्त यह कि ज्ञान से मुक्ति शीघ्र होती है ॥

टीका श्रुति ६ की

एवं विदुः - निश्चय करके जो पुरुष इस आत्मा को आत्मत्व करके जानते हैं सो पुरुष अमृत-मुक्त होते हैं -

सिद्धान्त यह कि आत्मा को जो अपना आप जानते हैं सो मुक्त हैं ॥

टीका श्रुति ७ की

ब्रह्मैव सन ब्रह्माप्यति - ब्रह्म हुआ हुआ ब्रह्म को प्राप्त होता है -

सिद्धान्त यह कि आपही आपको पाता है दूसरा कोई नहीं है ॥

दृष्टांत

जैसे माला गले में रहता है आगे की ओर से पीछे की ओर होजाता है दृष्टि करने से जब आगे दिख-लाई नहीं पड़ता तब ढूंढ़ने लगता है ढूंढ़ते ढूंढ़ते जब हाथ पीछे की ओर गले में पड़ा तब जाना ग या कि माला गले में है व्यर्थ खोज करते थे ॥

दार्ष्टांत

तैसे ही आत्मा- ब्रह्म आपही आप है अज्ञान करके दूसरा दिखलाई पड़ता है ॥

शिष्य प्रश्न

दो० साधन ऐसे ज्ञान का भगवत कहो निरधार
जिसतें संशय रहित हो छूटे दुख संसार

टीका हे भगवन् इस ज्ञान का साधन कहिये जिसतें संशय दूर होकर संसार का दुख छूटजाय

गुरु उत्तर

दो० साधन ज्ञानप्रकर्ण में कहा बहुत परकार
श्रुती उक्त कछु कहत हौं सुनो शिष्य कर प्यार

टीका ज्ञान का साधन ज्ञान प्रकर्ण में अने क प्रकार का कहा गया है अब श्रुति अनुसार कुछ कहता हूं हे शिष्य प्यार करके सुनिये ॥

दो॰ गंधार नगर के पुरुषको चोर बांध लेगया
भूषन सकल उतारकर नेत्र बांध छोड़ गया
गंधार नगर के पुरुष को भया बहुत दुख जान
पुकारे बहुत रोदनकरे दीन अती दुखमान
जैसे दीन का शब्द सुन दयायुक्त पुरुष आय
बंधन छोड़ कर सुखी किया मारग दिया बताय
तैसे ब्रह्म नेष्टी श्रोत्री गुरू कृपा करि आय
शिष्य को संशय रहित कर देवें ज्ञान बताय
यह साधन छान्दोग्य में लिखा निश्चै जान
दृष्टान्त और दार्ष्टांत को करियो नित्य मिलान
गुरु बिन साधन है नहीं निश्चै करिके जान
श्रुती स्मृती कहत है करियो सो परमान

दृष्टांत

॥ यह साधन छान्दोग्य उपनिषद में लिखा है ॥

गंधार नगर के पुरुष- राजा के लड़के को चोर बांध लेगया और सब गहना उतारके आंख उस की बांध कर जंगल में छोड़ गया गंधार नगर के पुरुष को बड़ा दुख हुआ बहुत विवश होके रो रो कर पुकारने लगा उसकी पुकार सुन कर दयायुक्त पुरुष- एक सज्जन तपस्वी आकर

उसकी आंख खोल दिया और गंधार नगर की राह तिसको बतला दिया कि आगे एक गांव है उसके आगे दूसरा गांव है उसके आगे एक वृक्ष है बहुत अच्छी उसकी शीतल छाया है और सब प्रकार सुखरूप है उसके नीचे जाकर दो क्षण विश्राम करना तिसके आगे तुम्हारा गंधार नगर है वह पुरुष तपस्वी के बतलाने के अनुसार रास्ता चलकर गंधार नगर अपने राज्य में जाकर पहुंच गया - जैसे तपस्वी ने राह बतला दिया तैसे गुरु ब्रह्मनेष्टी श्रोत्रि क्रिया करके मुमुक्षु को ज्ञान बतला देते हैं ॥

दार्ष्टांत

तैसे जीव साधन सम्पन्न- साधन युक्त अधिकारी जो है सोई गंधार नगर का पुरुष है- स्व स्वरूप- अपना स्वरूप जो उसका है सोई गंधार नगर है शुभ अशुभ कर्म उसका चोर है अज्ञान उसका कपड़ा है- आंख बंद करने का विवेक उसके नेत्र हैं स्थूल शरीर जंगल है सत चित आनंद लक्ष्य उसका भूषण- गहना है बारम्बार जन्मना यही दुख है बारम्बार सन्तों के पास जाना अपना

दुख कहना यही पुकारना व रोना है श्रोत्रिय ब्रह्मनेष्ठी गुरु तपस्वी हैं ज्ञान मार्ग है ज्ञान का उपदेश राह बतलाना है सो सुनो जागृत अवस्था एक गांव है स्वप्न अवस्था दूसरा गांव है सुसुप्ति अवस्था सुखरूप वृक्ष है- तुरीया आत्मा-अपना स्वरूप गंधार नगर का राज्य है ॥

ऐसे श्रोत्रिय ब्रह्मनेष्ठी गुरु के उपदेश से अज्ञान रूपी कपड़ा दूर होकर विवेकरूपी नेत्र खुल जाता है व मुमुक्षु विचार करके आत्मानंद को प्राप्त होता है- दृष्टांत और दार्ष्टांत को इस प्रकार मिलान करना चाहिये ॥

भगवद्गीता

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया
उपदिश्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥

टीका तद्विद्धि प्रणिपातेन - गुरु के साष्टांग दंडवत करने करके गुरु से प्रश्न करने करके गुरु की सेवा करने करके ज्ञान को जान - उपदिश्यन्ति ते ज्ञानं - तेरे को ब्रह्मनेष्ठी गुरु ज्ञान उपदेश करेंगे ॥

सिद्धान्त यह कि गुरु को प्रणाम व सेवा करके

प्रसन्न करना चाहिये तब ज्ञान पूछना उचित है उस समय गुरू ज्ञान का उपदेश करते हैं ॥ बतलाते हैं- गुरूकी कृपासे ज्ञानकी प्राप्ति होकर मुक्त होजाता है ॥

स्मृति- भगवद्गीतायां

श्रद्धावान्लभतेज्ञानं ॥ ९ ॥

टीका श्रद्धावान - श्रद्धा वाला पुरुष - लभतेज्ञानं - ज्ञान को पाता है -

सिद्धान्त यह कि जिसको गुरू के वाक्य में विश्वास है उसको ज्ञान होता है ॥

स्मृति- शिवगीतायां

उपायन करो भूत्वा गुरुं ब्रह्म विदम्ब्रजेत ॥ २० ॥ इत्यादि स्मृतेः

टीका उपायन करो भूत्वा- उपायन- भेट हाथ में लेकर प्रसन्नेच्छी गुरूको प्राप्त हो-

सिद्धान्त यह कि खाली हाथ गुरू के पास जाना न चाहिये जैसा गुरू होय वैसा भेट हाथ में लेकर जाना चाहिये - ब्रह्मचारी व गृहस्थ के पास द्रव्य लेकर जाना चाहिये सन्यासी के पास खाने और पहिरने की वस्तु यथायोग्य - जो वस्तु खाता

श्रौर जैसा महिनता होय - यथाशक्ति - जो न हो सके तो केवल इलून या फूल लेकर जाना चाहिये ॥

श्रुती - छांदोग्य उपनिषद

यथा सौम्या पुरुषं गंधारेभ्यो भिनद्धा
क्ष मानीयतं ॥ ११॥

टीका हे प्यारे जैसे गंधार नगर से पुरुष बंद नेत्र लाये हुए को - जैसे गंधार नगर के पुरुष को दयायुक्त पुरुषने राह बतलाय दिया था तैसे गुरू राह सुखीकी बतला देते हैं ॥

श्रुति

श्लो यस्य देवे परा भक्ति र्यथा देवे तथा गुरौ १२

टीका जिसको देवता के विषय परम भक्ति है जैसे देवता की भक्ति तैसे गुरू के विषय भक्ति चाहिये ॥

सिद्धान्त यह कि गुरू व देवता को एक जानना चाहिये ॥

श्रुति

आचार्यवान् पुरुषो वेति - इत्यादि श्रुतेः १३

टीका गुरु शिक्षित पुरुष आत्मा को जानता है

सिद्धान्त यह कि बिना गुरू के ज्ञान नहीं होता श्रुतिस्मृति से निश्चय होता है कि गुरू को मुख्य जानना चाहिये बिना गुरू की दया के कर्म उपासना ज्ञान कुछ नहीं होता कल्यान के हेतु गुरू हैं

दो० अध्यारोप अपवाद सर्व सीताराममें जान
बिन सीता किंचित नहीं कहन श्रवण व्याख्यान

स्मृति - आचार्य

श्लो० ईश्वरं मायिनं विंद्या न्मायातीतं निरंजनं २५

टीका ईश्वरं मायिनं विंद्यात् - ईश्वरको मायावी - माया वाला जान - मायातीतं निरंजनं - माया से रहित निरंजन - ब्रह्मको जान -

सिद्धान्त यह कि अध्यारोपापवाद यह सारा प्रपंच सीता राम मय है बिना सीता - अव्याकृत शुद्ध ब्रह्म है सो शुद्ध ब्रह्म में कहना सुनना कुछ नहीं बनता ॥

इति सीताराम प्रकर्णे ज्ञानकथायां तृतीयं प्रकर्ण समाप्तम्

हरिॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

अथ गीता प्रकर्ण प्रारंभः

देह और आत्मा के भिन्न २ दिखलाने और उपदेश आत्मज्ञान के विषय

सो॰ नमो नमो गुरुदेव को जो सत चित आनंदरूप
जिसके रवि उपदेश से नासे मोह तम कूप

अर्जुन जब लड़ाई को चले तब कृष्ण महाराज से कहा कि हमारा रथ जहां दोनों पक्ष के सेना - सिपाही लड़नेवाले खड़े हैं उस बीच में ले चलके खड़ा करो कृष्ण महाराजने रथ लेजाकर बीच में खड़ा करदिया अर्जुनने देखा कि दोनों ओर सब लड़नेवाले हमारे भाई चचा भतीजा गुरू और संबंधी हैं उन लोगों को किस प्रकार हम अपने हाथ से मारें इन लोगों को मारके हम राज्य क्या करेंगे तब कृष्ण महाराजने देह से आत्माको भिन्न दिखलायके अर्जुन को निश्चय करादिया कि आत्मा ज्यों का त्यों रहता है किसी प्रकार मरता

नहीं स्थूल शरीर का नाश होता है सो स्थूल श
रीर सर्वदा नहीं रहता अनित्यहै और आत्मा
सूर्य्यहै नाश नहीं होता ॥

दो ॥ कृष्णदेव विश्वेश्वर जानो । अभेद किंचित नाहिं मानो

सो ॥ काशी गीता सेवी को मुक्त होय निश्चित
इन दोनों में भेद नहिं निश्चै जानो मित्त ।
देह आत्मा के अविवेक से शिष्य शोक कर युत
ऐसे निश्चै मानिकर गुरु उपदेश करै नित
गीता द्वितीय अध्याय को करके गुरु उद्धार ।
देह से भिन्न कर आत्मा शिष्य को करै अधार
सोच करन को जोगना भीष्म आदिक जो
तिनकी सोच को जो करै पंडित नाहीं सो ।
चतुराई की बात से पंडित नाहीं हो ।
आवने जाने प्राण की करै सोचको जो ।

श्री भगवानुवाच

श्लो ॥ अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः १
टीका जो सोच करने के योग्य नहींहै तिन
का तुम सोच करतेहो च पुनः बुद्धिवानों के वा
के भाषने के विषय पंडित नहींहो पंडित लोग

जाने अपुनः आने प्राणों को सोच नहीं करते-

सिद्धान्त यह कि भीष्म आदि शोच करनेके योग्य नहींहैं वे लोग ज्ञानी हैं जन्म मरन उनको नहीं है तिनके मरने का जो सोच करते हो तुम पंडित नहीं हो केवल चतुराई की बातों से पं- डित नहीं होता जो कोई प्राण के आनेजाने का सोच करता है वह पंडित नहीं कहलाता क्यों कि पंडित ऐसा सोच नहीं करते- असून प्राण को कहते हैं केवल प्राणों के आनेजानेमें पं- डित आत्मा की हानि नहीं देखते इसी से सोच नहीं करते जो सोच करताहै वह मूर्ख है ॥

शिष्य प्रश्न

दो· सो-च करन को जोगता कैसे नाहीहो
यह ज्ञान अद्भुत कहो निश्चय होवे सो

टीका हे भगवन् सोच किस प्रकार न किया जाय कृपा करके ऐसा कहिये जिसमें निश्चयहो

गुरु उत्तर

दो हम अरु तुम अरु सबये कभी नाश नहिं हो
देह से भिन्न कर आत्मा तीन काल सत सो

श्लो नत्वेवाहं जातु नाशं नत्वं नेमे जनाधिपाः

टीका तु पुनः निश्चयकरके हम कदाचित्
इस लीला विग्रह शरीर के नाश होनेसे नाश-
वान् नहीं हैं और तुम और सब यह राजे दोनों सेना
के शरीर के नाश होने से नाशवान नहीं हैं क्या
पहले यह सब नहीं थे- पहले भी थे- अब हम
सब नहीं हैं- अबभी हैं- क्या इस शरीर के नाश
होनेके पीछे फिर न होंगे- होंगे- सत् स्वरूप
व अनादि होने से मैं आत्मा इस शरीर के भाव-
प्रगट होने के विषय और अभाव- अंतर्ध्यान होने
के विषय नाश होने वाला नहीं होताहूं इस प्रकार
तुम और सर्व राजे हैं-

सिद्धान्त यह कि आत्मस्वरूप करके तीनों
काल के विषय सब सत स्वरूप हैं नाशवान नहीं हैं

दो: जैसे देह के बाल में बाल आत्मा नाहिं
जैसे देह के जरा में जरा आत्मा नाहिं
तैसे देह के नास में नास आत्मा नाहिं
तैसे देह के जन्म में जन्म आत्मा नाहिं
ऐसे ज्ञानी जान कर कभी भरमता नाहिं
यह धर्म सर्व देह के धर्म आत्मा नाहिं

टीका जैसे आत्मा को इस देह के विषय कौमार - बाल अवस्था यौवन - मध्य अवस्था - जरा अन्त अवस्था देह के संबंध करके जान पड़ती हैं एक अवस्था के नाश होने में दूसरी अवस्था की उत्पत्ति होने में आत्मा का नाश और उत्पत्ति नहीं होती तैसेही वर्तमान देह के नाश होने से आत्मा का नाश नहीं होता और देह की उत्पत्ति होने से आत्मा की उत्पत्ति नहीं होती इसीसे ज्ञानी देह के नाश उत्पत्ति होने में भ्रम को नहीं प्राप्त होता उत्पन्न होता है व मरता है ऐसा नहीं मानता -

सिद्धान्त यह कि आत्मा सदा नित्य है - नाश से रहित है क्योंकि जरा अवस्था में कहा जाता है कि लड़काई में हमने यह खेल खेला और जवानी में यह काम किया यदि अवस्था के नाश होने में आत्मा का नाश होता तो लड़काई व जवानी का काम किस प्रकार व कौन कहता दूसरे उत्पत्ति काल में भी रोदन आदि में प्रवृत्त होता - जब लड़का जन्मता है उस समय बिना किसी के सिखलाये रोने

लगता है और दूध पीने लगता है यदि इस शरीर के पहले न होता तो रोना दूध पीना कैसे जानता रहता क्योंकि पूर्व संस्कार करके रोने और दूध पीने में प्रवृत्त होताहै इसी से ज्ञानी देह के नाश व उत्पत्ति होनेमें भ्रम को नहीं प्राप्त होता ॥

शिष्य प्रश्न

दो० यद्यपि सत्य आत्मा जानकर शोक मोह कछु नाहिं
तद्यपि देह संयोग बियोगमें दुःख मोह होवे ताहि

टीका हे महाराज आत्मा को सत्य जानकर मुझको शोक नहीं होता तब भी देह के संयोग बि-योग से दुख होताहै ॥

गुरु उत्तर

सो० बिषय इंद्रिय की योगता सुख दुख देवे जो
सहना तिसका योगहै आवे नाशे सो ॥

श्लो० मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्ण सुख दुःखदा
आगमा पायिनो नित्या स्तांस्तितिक्षस्व भारत १४

टीका मात्रा- श्रवण आदि इंद्रिय- स्पर्श-श ब्द आदि बिषय- कौन्तेय- हे कुन्ती के पुत्र अर्जुन इंद्रिय और बिषय की योग्यता - शीत - उष्ण - सरदी गरमी - सुख दुख देनेवाले हैं - श्रवण इंद्रिय को

शब्द का मिलाप हुआ तब अच्छा व बुरा जानपड़ा शब्द के अच्छा और बुरा जानपड़ने से हर्ष व ग्लानि होती है - आगम - आयकर - अपाय - नाश होनेवाला - अनित्य - सदा न रहना - सो हर्ष व ग्लानि आयकर नाश होनेवाले हैं सर्वदा नहीं रहते - तांतितिक्षस्व - तिनको सहारो - तिस सुख दुख आदि को हे भारत सहो -

सिद्धान्त यह कि विषय और इन्द्रिय की योग्यता सुख दुख देने वाले हैं तिसका सहारना योग्य है सुख दुख सदा बना नहीं रहता आयकर नाश होजाता है तिसको सहारना चाहिये क्योंकि सुख दुख सहारने का बड़ा फल होता है उसको भगवान आगे कहते हैं ॥

दो॰ जो सुख दुख में सम रहै व्याकुल चित्त नहो
ऐसा ज्ञानी मुक्ति में समरथ जानो सो ॥

श्लो॰ यंहि न व्यथयंत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते १५

टीका हि - यस्मात् - एते - दुख सुख आदि यंपुरुषं - जिस पुरुष को - जिस आत्मदर्शी को समदुःखसुखं - दुख सुख में एक रस रहने वाले

को - धीरं- ज्ञानी- सुख दुख में व्याकुल चित न होनेवाले को- न व्यथयन्ति- नहीं चलायमान करते नहीं व्याकुल करते- पुरुषर्षभ -पुरुषों में उत्तम हे अर्जुन सो पुरुष- सो ज्ञानी -अमृतत्वाय- मुक्त होने के अर्थ- कल्पते-समर्थ होता है-

सिद्धान्त यह कि जिस सहारने से यह दुख सुख आदि जिस आत्मदर्शी को सुख दुख में सम ज्ञानी को अपनी लेश्या से नहीं चलायमान करते- तिसते- तिस सहारने से हे अर्जुन सो ज्ञानी मोक्ष होने को समर्थ होता है- जो सुख दुख में एकरस रहता है व्याकुल नहीं होता है सो ज्ञानी मुक्त होने को समर्थ होता है- ज्ञानी उसको कहते हैं कि जैसे बुद्धिमान् - घड़ा को सिवाय मिट्टी के और कुछ नहीं देखता तैसे ज्ञानी यह सारे प्रपंच सुख दुख आदि को ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं देखता एक ब्रह्म पूर्ण देखता व जानता है ॥

सो॰ दुखसुख सर्व अनात्मा कभी सत्य नहि होय ।
आत्म सत्य स्वरूप को असत्य करै नहि कोय ।
निर्णय सत्य असत्य का ज्ञानी जाने जो ।
ऐसा निश्चै जानकर दुःख सहारो सो ।

श्लो॰ नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः
उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः १६

टीका असतो - असत - अनात्मा - भाव - होना न विद्यते नहीं है - अभाव - न होना - सतः - सत स्वरूप - आत्मा न विद्यते - नहीं है - अनात्म धर्मशाला होनेसे कार्य कारण के सहित सुखदुख आदिक सर्व अनात्मा का होना नहीं है और सदा एक रस होने से सतस्वरूप आत्मा का न होना नहीं है - तु पुनः अपि निश्चय करके - अनयो उनयो - इस दोनों आत्मा अनात्मा का अन्तः निर्णय विभाग - अलग अलग दृष्टा - देखता है - तत्व दर्शिभिः - आत्मदर्शी - ज्ञानी करके - तु पुनः निश्चय करके निर्णय दोनों आत्मा - अनात्मा का आत्मदर्शी करके देखा है -

सिद्धान्त यह कि असत सत नहीं होसक्ता व सत असत नहीं होसक्ता - जैसे रज्जू में सर्प असत है सत नहीं होसक्ता व रज्जू सत है असत नहीं होसक्ती तैसेही आत्मा सत है और सारा प्रपंच दुखसुख आदि असत है निर्णय इन दोनोंका ज्ञानी जानते हैं - ऐसा निश्चय जानकर दुख सहारना योग्य है

चौ॰ जिस कर सर्व व्यापक मानो

सो नाश रहित आपको जानो
जो नाश रहित आत्मा सोई
तिसका नाश करै नहिं कोई

श्लो० अविनाशीतु तद्विद्धि येन सर्व मिदं ततं
विनाश मव्ययस्यास्य नकश्चित्कर्तु मर्हति ७

टीका नाश से रहित- तुपुन: तिसको जान जिस करके सर्व यह व्याप्त है - अस्य- इसको - अव्यस्य अविनाशी को - कश्चित् - कोई वादी - विनाशं - नाशको - कर्तुं - करनेको - नार्हति - नहीं योग्य है - जिस आत्मा करके यह सर्व जगत व्याप्त है तिसको नाश से रहित आत्मत्व करके जान इस करके अविनाशी को कोई वादी नाश करने को योग्य नहीं है

सिद्धान्त यह कि जिस करके सर्व व्यापक है सो नाश रहित तुम आपको जान जो नाश रहित है सो ही आत्मा है तिसका नाश करनेवाला कोई नहीं है क्योंकि सब मतवाले इस आत्मा को सत्य मानते हैं ॥

दो० आत्म सत्य स्वरूप की देह नाशवंत जान
आत्म नाश से रहित है निश्चै कर परमान
ऐसे निश्चै जानकर युद्ध का करो समान

इस में संशय है नहीं करो नित्य परमान

श्लो॰ अंतवंत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः

अनाशिनो अमेयस्य तस्माद्युद्धस्वभारत १८

टीका अन्तवन्त इमे देहा - यह देह - नित्यस्य सत आत्मा का - शरीरिणः - शरीरवाले का - अनाशिनः - नाश से रहित का - अप्रमेयस्य - परिमान से रहित - इन्द्रिय करके अदृश्य का अन्तवन्तः अन्त वाला - नाशवान - उक्ता - कहा है - तस्मात - तिसतें - युद्धस्वभारत - युद्ध करो हे भारत - हे अर्जुन - सत आत्मा शरीर वाले नाश से रहित इन्द्रिय का अदृश्य का यह देह नाशवान विद्वान व वेदने कहा है तिसतें युद्ध करो क्योंकि शरीर अन्तको नाश होता है आत्मा नाशसे रहितहै -

सिद्धान्त यह कि इस शरीर को जो तुम नाश होने का भरम करते हो सो शरीर सदा रहने वाला नहींहै अन्तको नाश होनेवाला है ऐसा निश्चय करके भ्रम को छोड़के युद्ध करो - जो परमेश्वर ने अर्जुन को युद्ध करने को कहा सो यह विद्धि नहीं है - अवश्य युद्ध करना नहीं कहा अर्जुनको शरीरों में जो मोह था और भ्रमथा कि युद्ध करें या न करें क्योंकि इसमें सब

हमारे भाई बन्धु हैं सो आत्मा को नाशसे रहित व शरीर को नाशवान दिखलायकर अर्जुन के कहने का अनुवाद परमेश्वर ने किया है सिद्धि उसको कहते हैं जो अपवश्य हो अनुवाद उसको कहते हैं जो किसी के कहे हुए को कहे ॥

दो॰ कर्त्ता क्रिया हननका आत्मा जाने जो
देह से भिन्न कर आत्मा नहीं जानता सो
हनन क्रिया का कर्मभूत जाने आत्मा जो
आत्म रूप जाने नहीं मूरख जानो सो
मारे मरै न आत्मा निश्चय करके जान
देहसे भिन्नकर आत्मा क्रिया रहित पहिचान

श्लो॰ यएनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतं
उभौतौ न विजानीतो नायंहंति न हन्यते १९

टीका य:-यह जो पुरुष- एनं- आत्मानं- इस देही निष्क्रय आत्मा को - वेत्ति - जानता है- हंतारं- मारनेवाला- य: -जो- चपुन:- एनं- इस सत स्वरूप आत्मा को-मन्यते- मानता है- हतं- मरनेवाला- उभौतौ- यह दोनों -जो मारने वाला व मरने वाला जानता है - न विजानीतो - नहीं जानते नायंहंति- नहीं मारता निष्क्रय होनेसे-नहन्यते

न मरता है सत होने से -

सिद्धान्त यह कि जो पुरुष इस आत्मा को मारनेवाला व मरनेवाला मानता है सो दोनों आत्मा को नहीं जानते - यह आत्मा न मरता है न मारता है - उत्पत्ति व नाश धर्म देह का है जो कोई आत्मा को मारता व मरता जानता है सो मनुष्य आत्मा को देह से अलग नहीं जानता वह अज्ञानी है क्योंकि आत्मा सब क्रिया से रहित सत स्वरूप है जो कोई पढ़कर व सुनकर अपने को मारता व मरता मानता है उसका जन्म व्यर्थ है ॥

दो॰ जन्मै मरै न आत्मा कछु छिन्न नहिं होय
स्थिर बदल होवै नहीं निश्चय जानो सोय
यह धर्म सब देह के निश्चय करिके जान
देह से भिन्न कर आत्मा क्रया रहित पहिचान
हनन होवै जब देह का हनन आत्मा नाहि
जैसे घट के फुटन में आकाश फुटता नाहि

श्लो॰ नजायते म्रियते वाकदाचिन्नायं भूत्वा भविता वानभूयः ॥ अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे २०

टीका अयं - यह आत्मा - कदाचित - कभी

नजायते-नहीं उत्पन्न होताहै-नम्रियते-नमर
ता है-वा अथवा-भूत्वा-होकरके-भूयः-फेर
भवितावान-होनेवाला नहींहै-अजो-उत्पत्ति से
रहितहै-नित्यः-नाशसे रहितहै-शाश्वतोयं-
निरन्तरहै सर्वभेदसे रहितहै-अयंपुराणो-यह
आत्मा प्राचीन-सनातन है-नहन्यते-नहीं हनन
होता-हन्यमाने शरीरे-शरीर के हनन होने से
यह आत्मा नकभी जन्मता है न मरताहै नहो
करके होनेवालाहै उत्पत्ति नाशसे रहितहै-नि
रंतर है-सनातनहै-शरीर के मरने से मरता नहीं
सिद्धान्त यह कि जन्म मरण धर्म देह का है
आत्मा नित्य एक रसहै ॥

संस्कृत वेदांत संज्ञा

अस्ति जायते वर्द्धते विपरिणमते अप
क्षीयते विनश्यती त्येवं यास्कादीभिरु
क्ताः षट्भाव विकाराः ॥२१॥

टीका अस्ति-स्थितरहना-जायते-उत्पत्ति
होना-वर्द्धते-वृद्धि होना-बढ़ना-विपरिणमते
विपरिणाम होना-बदलना-अपक्षीयते-छिन्न
होना-विनश्यति-नाश होना-इतिएवं-इस

प्रकार- यास्कादिभिः उक्ताः -यास्क आदि ऋ-षियोंकरिके कहाहै- षटभाव विकाराः छः प्रकार के विकार- १ होना- २ स्थित रहना- ३ बढ़ना- ४ बदलना- ५ छिन्न होना- ६ नाश होना - इस प्रकार यह छः प्रकार के विकार- कार्य्य यास्का-दि ऋषियों ने कहाहै सो आत्मा इन छः विकारों से रहित है-

सिद्धान्त यह कि आत्मा सत्य वा निष्क्रियहै आत्मा का नाश नहीं होता वा आत्मा कोई क्रिया नहीं करता क्योंकि यह छः विकारों में से कोई वि-कार आत्मा में नहींहै इसलिये देहके नाश में आत्माका नाश नहीं होताहै जैसे घरके फूटनेमें आकाश नहीं फूटता जैसा का तैसा बना रहताहै

दो॰ जन्मै मरै न आत्मा निश्चय जानै जो
मारै मरावै कोई नहीं निश्चय करता सो

श्लो॰ वेदाविनाशिनं नित्यं यएनमजमव्ययं
कथंस पुरुषः पार्थकंघातयति हंतिकं १२

टीका यः एनं -जो इस आत्माको - अपनेको अविनाशिनं- नित्यं- अजं- अव्ययं- नाशसे रहित नित्य- अज- जन्मसे रहित- अव्यय- निर्विकार-

तर्याति हन्तिक — किसको मर घाताहै और मारता है किसको —

सिद्धान्त यह कि हे पार्थ जो पुरुष इस आत्मा को - अपने को नाश से रहित - नित्य जन्म से रहित निर्विकार है तिस आत्मा को जानता है सो पुरुष किस प्रकार किसको मरवाता है व किसको मारताहै

जो कोई आत्माको कि अपना आप है जन्म मरण आदि षट् विकार से रहित जानता है सो निश्चय करता है कि आत्मा न किसीको मर वाताहै न किसी को मारताहै क्योंकि आत्मा निष्क्रिय व निर्विकार है ॥

शिष्यप्रश्न

दो देहके भीतर आत्मा निश्चय करिया सो
नाश होवे जब देहका कैसे नाश न हो

टीका हे भगवन् देह के भीतर जब आत्मा है तब देह के नाश होने से आत्मा का नाश कैसे नहीं होता इसको स्पष्ट करके कहिये ॥

शस्त्र अग्नि जल पवन से कभी नाश नहिं हो

टीका हे शिष्य निश्चय करके आत्मा निराकार है इस हेतु से हथियार और अग्नि और जल और पवन से उसका नाश कभी नहीं होता॥

श्लो नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः २३

टीका एनं-इस आत्मा को-शस्त्राणि न छिन्दति-हथियार नहीं छेदते-एनं पावकः न दहति-इस आत्मा को पावक-आग नहीं जलाती-च पुनः अयं आपः न क्लेदयंति-इसको जल नहीं गलाता-मारुतः न शोषयति-हवा नहीं सुखाती-

सिद्धान्त यह कि देह सावयव है आत्मा निरवयव है-निरवयव होने से इस आत्मा को हथियार नहीं काटता अग्नि नहीं जलाती जल नहीं गलाता हवा नहीं सुखाती॥

दो शस्त्र आदिक सर्व से आत्मा नाश न हो
सर्वव्यापक पूर्ण सदा क्रियारहित है सो

श्लो० अच्छेद्योय मदाह्योय मक्लेद्योशोष्य एवच
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः २४

टीका अच्छेद्योयं- यह आत्मा अच्छेद्य है- हथियार से काटा नहीं जाता- अदाह्योयं- आग से जलता नहीं- अयं- यह आत्मा- अक्लेद्य है जलसे गलता नहीं- एवच- अर्जुनः निश्चय करके- अशोष्य है- हवा से सूखता नहीं- नित्यः नित्य है- सर्वगतः- सर्व व्यापक है- स्थाणु- स्थित है अयं- यह आत्मा- अचलः- चलायमान नहीं है सनातनः- सनातन है- प्राचीन है-

सिद्धान्त यह कि यह आत्मा- अच्छेद्य- अदाह्य अक्लेद्य- अशोष्य- नित्य- सर्वव्यापक- स्थित- अचल सनातन है किसी प्रकार नाश नहीं होता व्यापक- पूर्ण- सर्व क्रिया से रहित है ॥

दो० देह इन्द्रिय का गोचर है आत्मा गोचर ना ह
ऐसा निश्चय जानकर सोच करो तुम नाह

श्लो० अव्यक्तोय मचिंत्योय मविकार्योय मुच्यते
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुसोचितु मर्हसि २५

टीका अयं अव्यक्तः- यह आत्मा अव्यक्त है- निराकार है- अयं अचिन्त्यः- यह आत्मा

अचिन्त्यहै - मन बुद्धि चित्त अहंकार आदि किसी इन्द्रिय का विषय नहींहै - अयं अविकार्यः - यह आत्मा अविकारी है - पंचभूतों का विकार - कार्य नहींहै - उच्यते - वेद कहताहै - तस्मात् एवं वि- दित्वा - तिस कारनते इस प्रकारजानकर - अयं अनुशोचितुं न अर्हति - इस आत्मा के सोच कर नेको नहीं योग्य हो - यह आत्मा निराकार है किसी इन्द्रियका विषयनहींहै पंच भूतों का कार्य नहींहै वेद कहताहै तिसतें इसप्रकारजानकर इस आ- त्मा को तुम सोच करने के योग्य नहींहो -

सिद्धान्त यह कि देह इन्द्रियों का गोचर है आत्मा गोचर नहीं है ऐसा जानकर तुमको सोच करना योग्य नहींहै ॥

दो॰ यदि मरता जन्मता आत्मा सदा मानते तुम
तोभीसोचकी जोगता नहीं सोभावे तुम

श्लो॰ अथचैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसेमृतं
तथापित्वं महाबाहो नैवंसोचितु मर्हसि २६

टीका अथ पूर्व उपदेशके अनन्तर - पहले जो उपदेश किया है उसके पीछेभी - एनं - इस आत्माको - नित्यजातं - नियम करके शरीरकेसाथ

तथापित्वं महाबाहो - तौभी तुम को हे अर्जुन - एवं सोचितुं न अर्हसि - इस प्रकार सोच करने के तुम योग्य नहीं हो

सिद्धान्त यह कि पहले उपदेश के पीछे है - पहला जो उपदेश है कि आत्मा जन्मता मरता नहीं यह बात न मानो शरीर के साथ जन्मता मरता मानते हो तो भी सोच करना न चाहिये ॥

शिष्यप्रश्न

दो आत्मानाश न है नहीं निश्चय कीया सो
इष्ट अदृष्ट के दुःखकी सदा सोचता हो ।

टीका हे भगवन् आत्मा का नाश नहीं होत यह निश्चय किया तबभी इष्ट अदृष्ट के दुःख का सोच होता है ॥

गुरु उत्तर

दो प्रारब्ध कर्मके नाशसे मृत्यु निश्चय होय
पूरब संचित कर्म से जन्म अवशिक होय
ऐसा निश्चय जानिकर सोच करो नहि को
सुखदुख अपने वश नहीं निश्चय जानो सो

तस्माद परिहार्य्येऽर्थे नत्वं शोचितुमर्हसि २७

टीका   जातस्य - उत्पत्ति हुए शरीर का - हि - निश्चय करके प्रारब्ध कर्मके नाशसे - ध्रुवो मृत्युः - निश्चय करके मृत्यु होताहै - ध्रुवं जन्म मृतस्यच - चपुनः मरे हुए शरीरका संचितकर्म के वशसे निश्चय करके जन्म होताहै जिसतें यह अर्थ अपरिहार्यहै - जो जन्मता है सो मरताहै जो मरता है सो जन्मता है यह टरता नहीं - तस्मात् - तिसी कारनतें - अपरिहार्य्येऽर्थे - अपरिहार्य अर्थके विषय - जिसका परिहार नहींहै तिस अर्थके विषय - नत्वंशोचितुमर्हसि - तुम सोच करने के योग्य नहीं हो क्योंकि जो जन्मता है मरेगा और जो मरता है जन्मेगा -

सिद्धान्त यह कि निश्चय करके प्रारब्ध कर्म के नाश से उत्पत्ति हुए शरीरका मृत्यु होता है व संचित कर्म के वशसे मरे हुए शरीर का जन्म होता है जब कि यह अवश्य होताहै टरता नहीं तब इस शरीर का सोच करना योग्य नहींहै क्योंकि जो मरेगा उसका जन्म होगा यह अर्थ अज्ञानियों

। है- ज्ञानीको कोई न मरता है न जन्मता है
ना जन्मना मानना यह कार्य अज्ञान का है॥

शिष्य प्रश्न

यदपि आत्मस्वरूपमें किंचित सोच नहीं
तदपि देह इन्द्रियकोयादकर सोच योगताहीं

टीका हे भगवन यद्यपि आत्मरूप में
कछु सोच नहींहै पर तौभी देह इन्द्रिय को याद
करके सोच करना योग्य है ॥

गुरु उत्तर

आदि अन्तमें हैनहीं मध्ये किंचित हो
यह अवस्था सर्वदेहकी निश्चै जानो सो
ऐसे निश्चै जान कर दुःख सोचता काहि
स्वप्ने इन्द्रजाल में किंचित वस्तु नाहि
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानिभारत
अव्यक्तनिधनान्येव तत्रकापरि देवना १८

टीका भूतानि- भूत- पंचभूतों का कार्य श
रिर जो है- आदीनि- आदिके बिषय- अव्यक्त
नहीं दिखला हुएथा है- मध्यानि- मध्यके बि
षय- व्यक्त- उपलब्ध होता है- दिखलाई देता
है- भारत- हेभारत- एव- निश्चयकरके- नि

धनानि - अन्तके विषय - अव्यक्त नहीं दिखला ई देता - तत्र - तिसके विषय - कापरिदेवना - दुःख प्रलाप कल्पना - रोना पीटना क्या - यह शरीर भूतों का कार्य जो है उत्पत्ति होने से पहले नहीं दिखलाई देता बीच में यह शरीर दिखलाई पड़ता है - शरीरके नाश होने से पीछे फेर यह शरीर नहीं दिखलाई देता - स्वप्न व इन्द्रजालकी भांत तिस शरीर के नाश होने में रोना व सोच करना क्या क्योंकि ज्ञानी कोजगत सर्व ब्रह्म के विषय मृगतृष्णा की भांत झूठा जानने करके दुखका और सोच का अवकाश नहीं होता - कोई समय नहीं मिलता -

सिद्धान्त यह कि जब शरीर पहले पीछे नहीं है बीच में दिखलाई पड़ता है तब शरीर के नाश का सोच करना उचित नहीं है क्योंकि मिथ्या है कुछ सत्य नहीं है ॥

दो आत्मरूप दुर्लभ है सबकोई जानै नाहिं
देखे सो अश्चर्य है कहे सुने अश्चर्य माहिं
सुनिकर कहिकर देखकर नहीं जानता जो
संशय आदिक कर युक्त होय दुर्लभ ही है सो

इस आत्मा को- आश्चर्यवद्वदति- आश्चर्य की

नाईं कहताहै- तथैव- तिसी प्रकार- चान्यः-

अर्जुन: और कोई एक- आश्चर्यवत्- आश्चर्य

की तरह- अर्जुन:- एनं- इस आत्मा को- अन्यः

और कोई एक- शृणोति- सुनता है- श्रुत्वापि-सु

नकरके भी- एनं- इस आत्मा को- चएव- अर्जुन:

निश्चय करके- नवेद- नहीं जानता- कश्चित्-कोई

एक- इस आत्मा को कोई आश्चर्य की नाईं देख

ताहै और कोई आश्चर्य की तरह कहता है कोई

आश्चर्य के प्रकार सुनताहै- अर्जुन: निश्चय करके

और कोई इस आत्मा को सुनकरके भी नहीं जान

ता- देखनेवाला व कहनेवाला व सुनने वाला

आश्चर्य को प्राप्त होताहै क्योंकि संशय आदिक

युक्तहै शुद्धि शुद्ध नहीं है-

श्लो॰ देहीनित्यमवध्योयं देहे सर्वस्य भारत
तस्मात् सर्वाणिभूतानिनत्वंशोचितु मर्हसि ३०

टीका देही-आत्मा-नित्यं-सदा-अवध्यो यं-अवध्यहै-देहे सर्वस्य भारत-सर्वदेह के वि षय हे भारत-तस्मात् सर्वाणि भूतानि-तिस्तें सर्वभूत के विषय-त्वं शोचितुं न अर्हसि-तुम सोच करने को नहीं योग्य हो-

सिद्धान्त यह कि हे भारत आत्मा सर्वदा सर्व देह के विषय अवध्य है मरता नहीं तिस्तें ऐसा जानकर सर्वभूत-किसी के विषय तुमको सोच करना योग्य नहीं है ॥

दो॰ स्वधर्म अपना देखिकर युद्धसे डरो न को
धर्मयुद्ध से क्षत्रीको साधन और न कोइ

महँसि- कम्पायमान होने को नहीं योग्य हो तुम
धर्मात्युद्धात् श्रेयः - हि निश्चय करके धर्मयुद्ध
ते कल्याण का साधन - अन्यत् क्षत्रियस्य न विद्य
ते - और कोई क्षत्री को नहीं है - स्वधर्मको देख
करके तुम कांपने के योग्य नहीं हो - क्षत्रिय को
कल्याण का साधन धर्मयुद्धसे और कोई नहीं है ॥

सिद्धान्त यह कि लड़ना धर्म क्षत्रियों का है
तुम अपना धर्म जान करके लड़ने से मत डरो क्यों
कि क्षत्रिय को सिवाय धर्म युद्ध के और कोई सा-
धन कल्याण का नहीं है ॥

दो॰ बिना जाचना लाभ है खुला स्वर्ग को द्वार
धर्मी छत्री पावते ऐसा युद्ध अधार ।

श्लो॰ यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतं
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशं ३२

टीका यदृच्छया - इच्छा के बिना - चउप
पन्नं - अउनः प्राप्त है - स्वर्गद्वारं अपावृतं - खुला

[illegible]

युद्ध मिलता है व धर्मयुद्ध से स्वर्ग होताहै ॥

दो॰ स्वधर्मलक्षण युद्ध को त्यागै करै न जो
स्वधर्म कीरति त्यागकर मिले पापको सो

श्लो॰ अथचेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि
ततः स्वधर्मं कीर्तिंच हित्वा पापमवाप्स्यसि ३३

टीका अथचेत् - पक्षान्तरे - औरपक्ष को कहतेहैं - चेत् त्वं - इमं - धर्मं संग्रामं न करिष्यसि यदि तुम इस धर्म युद्ध को न करोगे - ततः स्वधर्मं कीर्तिंच - हित्वा पापं अवाप्स्यसि - तिसतें तुम अपने धर्मको च पुनः कीर्तिको त्याग करके पापको प्राप्त होगे - पहले तो इस धर्म युद्ध के करनेसे स्वर्ग होगा और जो तुम इस धर्म युद्ध को न करोगे तो अपने धर्मको और कीरतिको त्याग करके पापको प्राप्त होगे -

सिद्धान्त यह कि जो कोई अपने स्वधर्म को

छोड़ देता है उसको पाप होता है इसलिये जिसका
जो स्वधर्म है सो करना चाहिये ॥

सो॰ नव सर्व प्रानी निन्दया चिरकालकी उच्चार
गुणयुक्तकी निन्दया मरणसे अधिक विचार

श्लो॰ अकीर्तिंचापिभूतानि कथयिष्यंतितेऽव्ययां
संभावितस्यचाकीर्ति र्मरणादतिरिच्यते ३४

टीका अकीर्तिं - निन्दा - च अपि - चपुनः
निश्चै करके - भूतानि - सर्वभूत - सब प्राणी - कथ
यिष्यंति - कहेंगे - ते - तुम्हारी - अव्ययां - चिरकाल -
संभावितस्य अकीर्तिः - गुनमान पुरुष की निन्दा
मरनात् मरने तें - अतिरिच्यते - अधिकतर है -
निश्चय करके तेरी निन्दा सब लोग बहुत कालकों
गे गुनवाले पुरुष की निन्दा मरने से बड़के हैं -
सिद्धान्त यह कि जिस काम में निन्दा होय उस
कामके करनेसे मरना अच्छा है ॥

सो॰ भयकर रण से भाग्या महारथी चित मेंजान
जिनके मध्यमें बड़ातुम भयालघु पहिचान

श्लो॰ भयाद्रणादुपरतं मंस्यंतेत्वांमहारथाः
येषांचत्वं बहुमतो भूत्वायास्यसिलाघवं ३५

टीका भयात् रणात् उपरतं - भयते रणते

भागा हुआ - मस्यंतेत्वां - कहेंगे तुम्हें - महार
था: - महारथी - करण दुर्योधन आदि सबराजा
लोग - येषांन्त्वं - जिनके बीच में तुम - बहुमतो
बहुत गुन करिके युक्त - भूत्वा - जानाहुआहै - या
स्यासि - प्राप्तहोगा - लाघवं - लघुभावको - डरके
लड़ाई से हटगया कहेंगे तुमको महारथी फिर
जिनके बीच में तुम बहुत गुनमान माना हुआ
है लघुभाव - छोटाई को प्राप्त होगा -

सिद्धान्त यह कि तुम को सब लोग कहेंगे कि
लड़ाई से डरके मारे भाग गया और जिसके मध्य
में तुम बड़ाहै उनके बीचमें छोटा होगा - बड़ाई
तेरी जाती रहेगी ॥

शिष्य प्रश्न

दो. भीषम आदि निन्दा नाकरें रक्षक तिनकाजो
दुरयोधन आदि शत्रवः करें निन्द्या सो ।

टीका हे भगवन् भीषम आदिक निन्दा
न करेंगे जिनकी रक्षा होगी दुर्योधन आदिक जो
शत्रुहैं सोई निन्दा करेंगे ॥

गुरु उत्तर

दो अवाच्य वचनको शत्रवः कहै बहुत प्रकार

निन्दा सामर्थ्य तेरी की करें बहुत निरधार
इससे परे दुख कौनहै देखो आप विचार
स्वधर्म त्यागे निंदया होवे बहुत परकार

श्लो० अवाच्य वादांश्च बहून्वदिष्यंतितवाहिताः
निंदंतस्तवसामर्थ्यं ततोदुःखतरंनुकिं ३६

टीका च-पुनः- अवाच्यवादांश्च बहून्-अवाच्य वचन बहुत को- वदिष्यंतितवाहिताः कहेंगे तेरे शत्रु - निंदंतस्तव सामर्थ्यं - निन्दा करतेहुए तेरी सामर्थ्य की - ततो दुःखतरं नु किं - तिसतें परे दुख अधिक कहो क्या है - तेरी सामर्थ्य की निंदा करते हुए तेरे शत्रु अवाच्य वचनों को कहेंगे कहो तिसतें अधिक दुख बड़ा क्या है -

सिद्धान्त यह कि जो बात कहने के योग्य नहीं है उसको तुम्हारे शत्रु कहेंगे और तुम्हारी सामर्थ्य की निन्दा करेंगे विचार करके देखो इस से अधिक दुख क्या होगा कि अपना धर्म त्यागनेसे बहुत प्रकारकी निंदा होगी ॥

दो० युद्ध करतेमें मरेजो जाय स्वर्ग मेंसो
सर्व शत्रु को जीतेजो पृथिवी भोगे सो

लाभसोई परकार का निश्चय करके भार
शत्रु मारन निश्चय कर होव युद्ध को त्यार
श्लो हतोवा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वाभोक्ष्यसेमहीं
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ३७
टीका हतोवाप्राप्स्यसिस्वर्गं-अथवा मरा
तो प्राप्त होगा स्वर्ग को - जित्वावाभोक्ष्यसेमहीं-
अथवा जीता तो भोगेगा पृथिवी को - तस्मादु
त्तिष्ठकौन्तेय- तिसतें खड़े हो हे अर्जुन - युद्धाय
कृतनिश्चयः - युद्धकेअर्थे - शत्रु को मारूंगा ऐसा
निश्चय करके - हे अर्जुन जो लड़ाई में तुम मरगया
तो स्वर्ग को प्राप्त होगा और जो शत्रु कोजीतलियातो
पृथिवी का राज करेगा तिसतें शत्रु मारूंगा ऐसा
निश्चय करके लड़ने को तुम खड़े हो ॥
सिद्धान्त यह कि इस लड़ाई में दोनों प्रकार
से लाभहै जो मरगयातो स्वर्ग होगा जो जीतलिया
तो राजकरेगा इसलिये लड़ना चाहिये ॥
दो· सुखदुख लाभ अलाभ अरु जय अजय को सम
करके युद्ध को जे करो पाप होय नहिं तुम ।
श्लो सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवंपाप मवाप्स्यसि ३८

टीका सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ- सुखदुख लाभ अलाभ जय अजय को सम करता हुआ- बराबर देखता हुआ- ततो युद्धाय युज्यस्व- तिसके अनन्तर युद्ध करने के अर्थ जुड़ो- चेष्टा करो- नैवं पाप मवाप्स्यसि- इस प्रकार युद्ध करनेमें पापको तुम न प्राप्त होगे॥

सिद्धान्त यहकि जो तुम सुखदुख लाभ अलाभ जय अजयको एक जानकर युद्ध करोगे तो तुम को पाप नहीं होगा

दो॰ इस आत्म ज्ञानको कह्या बहुत परकार
साधन कर्म ज्ञानका आगे कौरे निरधार
इस साधनसे काटिये अती बंधअज्ञान
अती बंध ज्ञानके पाप कर्म को जान

श्लो॰ एषाते भिहिता सांख्ये बुद्धि योगे त्विमांश्रृणु
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबंध प्रहास्यसि ३९

टीका एषाते-तुम्हारे को यह- अभिहिता कहाहे- सांख्ये- सांख्य योगके विषय- बुद्धियोगे ज्ञान योगके विषय- तु इमांश्रृणु- तुम इसको सुनो बुद्ध्यायुक्तो यया- जिस बुद्धि करिके युक्त- पार्थ- हे अर्जुन- कर्मबंध- कर्मरूपी बंधन को- प्रहा

स्यसि - काटोगे तुम - हे पार्थ आगे जो तुम्हारेको कहाहै सो ज्ञान का सिद्धान्त है - यह सांख्य योगके विषय कहाहै अब कर्मयोग ज्ञानका साधन कहतेहैं उसको सुनो जिस निष्कामकर्म की बुद्धि से जो साधन ज्ञान का है सकाम कर्म जो प्रतिबंध ज्ञानका है तिस बंधन को काटोगे ॥

सिद्धान्त यह कि आगे हमने ज्ञान को कहा है अब निष्कामकर्म साधन ज्ञानका कहते हैं जिस साधनसे प्रतिबंधज्ञानका दूर होजाता है ॥

दो॰ कर्मयोग निःकामके फलकानाशनहो
प्रतिबाव बिगुन नहि होतहै निश्चै जानो सो
यथाशक्ति निःकाम हो करै कर्म कोजो
रक्षा भय संसार से निश्चै पावै सो ॥

श्लो॰ नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते
स्वल्पमप्यस्वधर्मस्य त्रायते महतो भयात् ३०

टीका नइह - इसके विषय - इस निष्काम कर्म योगके विषय - अभिक्रम - आरंभ - फलके आरंभ का - नाशोनास्ति - नाश नहींहै - प्रत्यवायो न विद्यते - पाप बिगुण नहींहै - स्वल्पमप्य स्वधर्मस्य - थोड़ाभी यह निष्कामधर्म - त्रायते महतो

अर्थात्- रक्षा करता है महा भय से-

सिद्धान्त यह कि इस निष्काम कर्म करने से फलके आरंभ का- निष्काम कर्मके फलका नाश नहींहै और पाप व विगुण जिसप्रकार सकाम कर्ममें होताहै सोभी नहींहै इस निष्काम कर्म का थोड़ा यथाशक्तिभी करना बड़ा है- ज्ञान द्वारा जन्म मरन से रक्षा करताहै इसलिये यथाशक्ति निष्काम कर्म करना चाहिये जिसमें संसार के भयसे रक्षा होय ॥

दो० बुद्धी आत्मज्ञानीकी एकभेदसे रहित
जो बुद्धी अज्ञानी की अनंतभेदके सहित

श्लो० व्यवसायात्मिका बुद्धि रेकेह कुरु नंदन ।
बहु शाखाह्यनंताश्च बुद्धयो व्यवसायिनां ३१

टीका व्यवसायात्मिकाबुद्धिः एका- निश्चय आत्मिक बुद्धि एक है- सब भेदों की नाश करनेवाली है- कुरु नंदन- कुरु के लड़के- हे अर्जुन- बहुशाखा बहुत शाखहै- हि- निश्चय करके- अनन्ताः अनन्त है- चपुनः- बुद्धयो व्यवसायिनां- बुद्धि जो अव्यव- सायियों की है- जो आत्मा के निश्चय करनेवाली बु- द्धि नहींहै- हे अर्जुन आत्माके निश्चय करनेवाली

बुद्धि सबभेदों का नाशक है जिस बुद्धिने आत्मानि श्चय नहीं किया - निश्चय करके उसकी बहुत शा- खें हैं - चअनः - अनन्त हैं ॥

सिद्धान्त यह कि ज्ञानी को जिसको पूर्ण एक आ त्मा निश्चय है उसको भेद नहीं है और अज्ञानी को जिसको एक पूर्ण आत्मा निश्चय नहीं है उसको अ- नेक भेद हैं ॥

दो॰ साधन फल प्रतिपाद्य का वेदवाक्य जो हो
अर्थवाद तिसको कहैं निश्चय जानो सो
तिसमें प्रीति सो करैं तम अज्ञानी जो
कैवल्य मुक्ति जानै नहीं स्वर्ग परायण हो

श्लो॰ यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ४२

टीका यामिमां पुष्पितां वाचं - जो यह पुष्पि त वाक्य को - प्रवदन्ति - कहते हैं - अविपश्चितः - अविवेकी - अज्ञानी - कथंभूताः अज्ञानिनः कैसे अ- ज्ञानी हैं - वेदवादरताः पार्थ - वेदके अर्थवाद में प्री- ति है जिनकी हे पार्थ न अन्यत् अस्ति इति वादिनः सिवाय स्वर्ग के और कुछ कैवल्य मुक्ति व ब्रह्म नहीं है - इस प्रकार कहते हैं - हे पार्थ जो अज्ञानी हैं सो

इस पलासके फूलके समान रमणीक वाक्य पूर्वमीमांसा के कहतेहैं वे अज्ञानी कैसे हैं वेदके अर्थवादमें प्रवृत्तिहै जिनको वेलोग इस प्रकार कहतेहैं कि सिवाय स्वर्गके कैवल्य मुक्ति और ब्रह्म किंचित नहीं है -

सिद्धान्त यहकि अज्ञानी केवल स्वर्गको मुक्ति जानते हैं सिवाय स्वर्गके और कुछ नहीं जानते ॥

दो॰ अर्थवाद में प्रीतिकर भोगपरायन हो
सिद्धान्त सारे वेदका कर्म जानता सो
इस मिथ्या विश्वाससे मुक्ती कभी नहो
बार बार संसार में आवेजावे सो ।

श्लो॰ कामात्मनः स्वर्गपरा जन्मकर्म फलप्रदां
क्रिया विशेष बहुलां भोगैश्वर्य्य गतिंप्रति ३३

टीका वे अज्ञानी कैसेहैं - कामात्मनः स्वर्गपरा - कामस्वरूप होतेभये - सकामी स्वर्ग परायण होतेभये स्वर्ग को परम कल्याण जानते हुए ऐसे रमनीक वाक्यों को कहतेहैं कैसे वाक्यों को - जन्म कर्मफलप्रदां - कर्मजन्म फलके देनेवालोंको - क्रिया विशेषबहुलां - क्रिया बहुल है जिनके विषय - तिनको - भोग ऐश्वर्य्य गतिंप्रति - भोग ऐश्वर्य

की प्राप्तिकेलिये तिन वाक्यों को कहते हैं ॥

सिद्धान्त यह कि जिसको अर्थवाद में प्रीतिहै कर्मको सब वेदका सिद्धान्त जानताहै उस को इस मिथ्या विश्वास से मुक्ति नहीं प्राप्त होती बारम्बार जन्म मरणमें पड़ा रहताहै ॥

सिद्धान्त श्लोक ३२ और ३३ का

अविवेकी वेद के अर्थवादमें प्रीति करतेहुए स्वर्गसे और मुक्ति नहींहै ऐसा कहते हुए काम रूप होते हुए स्वर्ग परायण हुएहुए ऐसे पुष्पित के समान रमणीक वाक्यों को कर्म जन्म फलदेने वाले को क्रिया बहुतहै जिनके विषय तिनको भोग ऐश्वर्यकी प्राप्ति के लिये कहतेहैं उनकी मुक्ति नहीं होती ॥

दो॰ भोग ऐश्वर्य्य की प्रीतिसे अपहृतभया विवेक
तिसको ज्ञान होवे नहीं करे उपाय अनेक ।

श्लो॰ भोगैश्वर्यप्रशक्तानां तयापहृत चेतसां ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौन विधीयते ३४

टीका भोगैश्वर्य्य प्रशक्तानां - भोग ऐश्वर्य्य के विषय प्रीति है जिनको - तया - तिसकर के - अपहृत - सर्व और से हरगया है - चेतसां -

विवेक जिन्हों का - तिनको - व्यवसाय - निश्चय-
त्मात्मिका बुद्धिः समाधौनविधीयते - चित्तके विषय
नहीं होती - जिनको भोग ऐश्वर्य्य के विषय प्रीती है
तिसी करके सर्व ओर से हरगया है विवेक जिनका
तिनको निश्चय आत्मिका बुद्धि चित्त के विषय
नहीं होती ॥

सिद्धान्त यह कि जिसका चित्त भोग ऐश्वर्य्य में
लगा रहता है उसको अनेक उपाय करें ज्ञान नहीं
होता - क्योंकि उसको धर्म अधर्म करने न करने
का विवेक नहीं रहता कि क्या करना चाहिये और
क्या न करना चाहिये ॥

शिष्यप्रश्न

दो यदी काम करमीको स्वर्गफलउत्तमनाहि
तिसकासाधनवेदमें लिख्या कहोप्रभुकाहि

टीका जब काम कर्मी को स्वर्ग फल उत्तम
नहीं है तब साधन उसका वेदमें क्यों लिखा है इस
को कृपा करके कहिये ॥

गुरु उत्तर

दो जैसे पुत्र कुपुत्रको माता करै पियार
तैसे कामी निस्कामीको देवै वेद अधार

पूर्वभाग जो वेदका कामी प्रती हो
बारंबार संसारको नित प्रकाशे सो
ऐसा निश्चय जानकर तुम कामी नहि हो
आत्म स्वरूपको निश्चै कर मुक्ति प्राप्त हो
दुख सुख आदि द्वंदमें राग द्वेष ना कर
सुखी आत्मरूपमें सदा स्थिति कर
योग क्षेमके जतन से सदा रहित तुम हो
सर्व प्रमादको त्याग कर ज्ञान नेष्ठी हो

श्लो॰ त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन
निर्द्वंद्वो नित्य सत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ४५

टीका त्रैगुण्य विषया वेदा - तीनों गुनोंका विषय वेदमें - पूर्वभाग वेदका तीनों गुणों का कार्य संसार जो है तिसका विषय है - संसार को प्रकाशता है - तुम हे अर्जुन - निस्त्रैगुण्यो भव अर्जुन - तिन तीनों गुनोसे निष्काम हो - निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो - निर्द्वन्द हो सदा सत स्वरूपमें स्थित हो - ब्रह्मनेष्ठी हो - निर्योगक्षेम आत्मवान् - योगक्षेमके यतनसे रहित हो - आत्मवान हो - ज्ञानी हो - योग - जो वस्तु प्राप्त नहीं है तिसके मिलने का यत्न करना इसको योग कहते हैं - प्राप्त वस्तूकी रक्षा करनी इस

सिद्धान्त यही कि जैसे माता पुत्र कुपुत्र दोनों को
प्यार करती है तैसे वेद कामी निष्कामी दोनों को श्रा
धार देताहै पूर्वभाग वेदका जो है वह कामी के लिये
सदा संसारमें आताजाता रहताहै सकाम कर्म से
बार बार जन्म मरण को प्राप्त होता रहता है ऐसा
जानकर तुम कामी मतहो आत्मस्वरूप को निश्च
य करके मुक्तहो दुख सुख आदि और प्रमाद को
त्याग करके ज्ञाननेष्ठी हो ॥

शिष्य प्रश्न

दो॰ अनन्त फल जो कर्म का तिनका करिके त्याग
ईश्वर अरपन कर्म जो करते कवन सुभाग

टीका कर्म का जो अनन्त फल है तिसको
त्याग करके ईश्वरार्पण कर्म करना किसलिये बहुत
अच्छाहै और उसमें क्या लाभहै ॥

गुरु उत्तर

दो॰ जैसे कारज बापी कूप तड़ाग का सर्व समुद्र के मांह
तैसे फलजो कर्मका सर्व ज्ञानके मांह ॥ ॥

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः

टीका यावानर्थ उदपाने- जितना कार्य थो ड़े जलों का है - सर्वतः संप्लुतोदके - सर्व ओर से भरा हुआ जल जो है - समुद्र- तिसके विषय होता है - तावान् सर्वेषु वेदेषु - तिसी प्रकार जितना वेदोक्त कर्मों में फलहै तितना सर्व फल- ब्राह्म- णस्य विजानतः - जानने वाले ब्राह्मण ज्ञानी को होता है ॥

दृष्टांत

एक यह कि जो काम कूआ नदी तालाव के जलसे अलग अलग होताहै वह सब काम एक समुद्र के जलसे होताहै क्योंकि तालाव आदि का जल सूख जाताहै सदा स्थिर नहीं रहता थो- ड़ा जल होने के कारण और समुद्र का कितनाही खर्च होय कभीनहीं सूखता - दूसरे यह कि उसी प्रकार एक एक कर्म से एक एक पदार्थ प्राप्त होता है व ज्ञान से सर्व फल प्राप्त होजाताहै किसीवस्तु

की इच्छा बाकी नहीं रहजाती क्योंकि कर्मों का फल भोग देकर नाश होजाता है व ज्ञान का फल जो मुक्त है- आत्मानंद की प्राप्ति सो नाश से रहित है- तीसरे यह कि जितनी नदी हैं सर्व समुद्र में मिली हैं जो एक एक नदी व तीरथ के जल के स्नान का फल होता है सो सब फल समुद्र के स्नान करने में जहां संगम नदियों और तीर्थों का है होता है तैसे ही जितना फल वेदोक्त कर्मों का है सर्व फल ज्ञान में होता है-

सिद्धान्त यह कि बिना ईश्वरार्पण-निष्कामकर्म के बिना ज्ञान नहीं होता और ईश्वरार्पण कर्म का अनन्त फल होता है क्योंकि जब ज्ञान हुआ तब किसी वस्तु की इच्छा नहीं होती ॥

शिष्य प्रश्न

दो — यदि कर्म का सर्व फल ज्ञानवान् को हो
यतन करें सभी ज्ञान में कर्म करें नहि को

टीका — जब ज्ञानवान को सब कर्मों का फल होता होय तब सब लोग ज्ञान में जतन करें कर्म कोई न करे ॥

दो

श्लो

गुरु उत्तर

सर्व कामना त्यागकर करो कर्मको नि
कर्मों के ना करने में करो प्रीति ना चि
कर्मों के अधिकारी तुम ज्ञान अधिकारी न
ऐसे निश्चै जानकर करो कामना ना

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाच
मा कर्म फलहेतुर्भूः माते संयोगस्त्वक

टीका कर्मण्येवाधिकारस्ते - कर्म
अधिकार तुम्हारे को - न ज्ञानके विषय -
षु कदाचन - फलके विषय - कदाचित्
हो - माकर्म फलहेतुर्भू - कर्मों के फलके
बीज मत हो - माते संयोगस्त्व कर्मणि -
को कर्मों के न करने के विषय प्रीती मत
प्रीति को कहते हैं ॥

सिद्धान्त यह कि तुमको कर्मका अधि
ज्ञानका अधिकार नहीं है निष्काम कर्म क
के न करने में प्रिती मत करो क्योंकि निष्का
करने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है
होता है ॥

शिष्य प्रश्न

दो० फल त्याग कर कर्म जो कैसे करने सो
कृपाकरि विधिको कहो निश्चै होवेसो

टीका — फलको त्याग करके कर्म कैसे करना होताहै दया करके हे भगवन इसकी विधिको कहिये जिसमें निश्चय होजाय ॥

गुरुउत्तर

दो० ईश्वरके परमारर्थ करो कर्मको नित
फलमें प्रीती ना करो निश्चयजानो मित
सुधबुद्धी की माशी ज्ञान सहितजो हो
सिद्धी तिसको कहत हैं निश्चयजानो सो
सिद्धी और असिद्धि को तुल्य जान्नाजो
समत्व योग इसको कहतहैं निश्चै जानोसो
समत्व योगको ग्रहणकर करै कर्म कोजो
ज्ञान उसीको होत है निश्चय करियो सो

श्लो० योगस्थः कुरुकर्माणि संगंत्यक्त्वा धनंजय
सिद्धा सिद्धौ समोभूत्वा समत्वंयोग उच्यते ३८

टीका — योगस्थःकुरुकर्माणि - हे अर्जुन समत्व योगके विषय स्थित हुआ हुआ कर्मको करो फलके विषय प्रिति त्याग करके सिद्धि असिद्धि दोनों

के विषय सम होकरके कर्मको करो उसको सम त्व योग कहते हैं - ज्ञानकी प्राप्तिको सिद्धि कहते हैं सिद्धि असिद्धि को बराबर जानना इसको सम-त्व कहते हैं ॥

सिद्धान्त यह कि नित्य ईश्वर के प्रसाद अर्थ कर्म को करो उसके फल में प्रिति मत करो निष्काम कर्म से ज्ञान के सहित शुद्ध बुद्धि की प्राप्ति होती है तिसको सिद्धि कहते हैं और सिद्धि असिद्धि को एक जानना तिसको योग कहते हैं सो समत्व योग को ग्रहण करके जो कोई कर्म करता है उसको ज्ञान होता है ॥

दो   सकाम कर्म निःकामते अति अधम करजान
जन्म मरण छूटे नहीं सकाम कर्म ते मान
निःकाम कर्मकी शरनको सदा प्राप्त हो ।
फल की इच्छा जो करे सदा दीन रहे सो ।

श्लो   दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय
बुद्धौ शरण मन्विच्छ कृपणा फल हेतवः ३८

टीका   दूरेण - दूरकरके - अत्यंत करके - हि निश्चय करके - अवरंकर्म - निकृष्ट है कर्म - बुद्धि योगाद्धनंजय - ज्ञानयोग ते हे अर्जुन - बुद्धौ - समत्व

बुद्धि के विषय- शरणं - रक्षा को- अन्विछन्- इच्छा
कर - कृपणाः फलहेतवः - कृपणाः - दीन हो
ताहै फलका इच्छा करने वाला - हे अर्जुन निश्चय
करके कर्म ज्ञानयोग से अत्यन्त करके निकृष्ट है
समत्व बुद्धि के विषय रक्षा की इच्छा कर फलका
इच्छा करनेवाला दीन होताहै ॥

सिद्धान्त यह कि सकाम कर्म निष्काम कर्म
से अत्यन्त निकृष्ट और बुराहै सकाम कर्मसे ज-
न्म मरण नहीं छूटता व सदा दुखी रहताहै इस
लिये निष्काम कर्म करना चाहिये- कर्म करे उसके
फलकी इच्छा न करे ॥

दो॰ समत्व बुद्धि कर युक्त जो त्यागे पुन्य अरु पाप
समबुद्धी हो कर्मको करो रात दिन आप
बंध का हेतू कर्म है निश्चय करके जान
सम बुद्धी के कर्म जो मुक्ति करे पहिचान

श्लो॰ बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलं ५०

टीका बुद्धियुक्तो - समत्व बुद्धि करके यु
क्त- जहाति - त्यागताहै - इह - इस लोक-मनु
शरीर के विषय - उभय- दोनों- सुकृत दुष्कृत-

पुन्य और पाप - तस्मात् योगाय युज्यस्व - तिस तें समत्व योग के अर्थ जुड़ो - चेष्टा करो - योगः कर्म सु कौशलं - समत्व योग कर्म के विषय कुशल है - मुक्ति का हेतु ज्ञान द्वारा - इस लोक के विषय समत्व बुद्धि करके युक्त पाप पुण्य दोनों त्यागता है - ज्ञान द्वारे तिसतें समत्व योग के अर्थ चेष्टा करो समत्व योग मुक्ति का हेतु है ज्ञान द्वारे -

सिद्धान्त यह कि सम बुद्धि पुन्य पाप का सोच विचार नहीं करता है सम बुद्धि होकर कर्म करता है पुन्य पाप की वासना करके कर्म करे तो बंधन होता है सम बुद्धि होकर कर्म करे तो मुक्त होता है

दो समत्व बुद्धि कर युक्त जो ज्ञानी होवे सो
जन्म मरन से रहित हो ब्रह्म रूप है सो

श्लो कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः
जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छंत्यनामयं ५१

टीका हि - यस्मात् - मनीषिणः - बुद्धियुक्ता - योगिनः। मुमुक्षु समत्व बुद्धि युक्त - ज्ञानी हो करके - कर्मजं फलं त्यक्त्वा कर्म से उत्पन्न फल को अव्याकृत से लेकर स्थूल शरीर पर्यन्त सब जगत

को त्याग करके - जन्म बंधविनिर्मुक्ताः - जन्मके
बंधनसे मुक्त हुआ हुआ - जन्ममरनसे रहितहुआ
हुआ अनामयं पदं - अनामय पदको - सर्वरोग
रहित ब्रह्म स्वरूपको - गच्छंति - प्राप्त होता है

सिद्धान्त यह कि मुमुक्षु ज्ञानी होकर अव्याकृत
से लेकर स्थूल शरीर पर्यन्त सर्व जगतको त्यागक
रके जन्म मरन से रहित हुआ हुआ सर्व रोग से र
हित जो ब्रह्म स्वरूप है तिसको प्राप्त होताहै ज्ञान
द्वारा - जैसे समत्वबुद्धिवाला पुन्य पापको ज्ञानद्वा
रा त्यागताहै तैसे ज्ञानी कर्मजन्य फलको छोड़कर
जन्म मरन से रहित ज्ञानद्वारा ब्रह्मस्वरूप होताहै

शिष्य प्रश्न

दो॰ कर्मयोगके करनसे ज्ञान परापत जो
तिसका लक्षण कौनहै कहो कृपाकरसो

टीका हे भगवन् कर्मयोग- निष्काम कर्म
से जो ज्ञान प्राप्त होताहै तिसका लक्षण क्याहै
कृपा करके कहिये ॥

गुरु उत्तर

दो॰ अज्ञानरूपी कीचसे बुद्धी निकसे जब।
सुन्या पड़्या कर्मकांड जो निष्फलभासे तब

दो॰ अनेक वाककी श्रवण कर बुद्धी भई उपराम
आत्म आनंद छोड़ कर पावे ना बिसराम
तिस काल फल योग का भया परापत जान
अखंड ज्ञानकी नेष्ठा निश्चे कर पहिचान

श्लो॰ यदाते मोह कलिलं बुद्धि र्व्यति तरिष्यति
तदा गंतासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ५२
श्रुति विप्रति पन्नाते यदास्थास्यति निश्चला
समाधा वचला बुद्धि स्तदा योग मवाप्स्यसि ५३

टीका श्लोक ५२ की

यदा - जिस काल के विषय - ते बुद्धिः - तुम्हारी बु-
द्धि - मोह कलिलं - अज्ञान कीच से - व्यति तरिष्यति -
विशेष तरेगी - जब तुम्हारी बुद्धि अज्ञानरूपी कीच
से निकलेगी - तदा - तिस काल के बिषय - श्रोतव्य
स्य - सुनने के योग्य है तिसको - श्रुतस्य च - च पुनः -
सुने हुए को - निर्वेदं - वैराग्य को - गंतासि - प्राप्त होगे -
सिद्धान्त यह कि जब बुद्धि जो अज्ञान के कीचड़ में
फसी है उस कीचड़ से निकलेगी - ज्ञान होगा तब जो
कुछ कर्म कांड व उपासना व पढ़ा व किया है अथ
वा बाकी है सो सब निष्फल व व्यर्थ जान पड़ेगा -
जब ज्ञान होगा तब ऐसा समझ पड़ेगा कि आगे जो

कुछ कियाहै सब निरर्थक कियागया और अब करने
से कुछ फल नहींहै यह लक्षण ज्ञान का है ॥

टीका श्लोक ५३ की

यदा - जिस कालके विषय - ते बुद्धि - तुम्हारी बु
द्धि - विप्रतिपन्ना - अनेक भेद कहने वाले वाक्यको
सुनके उपराम हुए हुए - समाधौ - समाधिके विषय
आत्मानंदके विषय - निश्चला - निश्चल होकर -
अचला - अचल होकरके - स्थास्यति - स्थित होगी
जिस कालके विषय तुम्हारी बुद्धि अनेक वाक्य सु
ने हुए से उपराम होकर निश्चल व अचल आत्मा
नंदके विषय स्थित होगी - तदा - तिस काल के
विषय - योगं अवाप्स्यसि - योगको प्राप्त होगे - तब
समत्वयोग के फलको प्राप्त होगे ।

सिद्धान्त यह कि जब अनेक वाक्य को सुनकर
बुद्धि सब ओर से हटकर आत्मानंद में स्थित होगी
तब तुम समत्वयोगके फलको प्राप्त होगे - निश्चल -
एक जगह स्थित रहना - अचल - फिर वहां से
न हटना ॥

दो॰ जिज्ञासु के जो यतन साध्य है ज्ञानीभूत स्वरूप
सो साधन अर्जुन पूछते भगवत करें निरूप

टीका जो जिज्ञासु को यत्न करिके साधन करनाहै और ज्ञानी का स्वरूपहै सो अर्जुन पूछ ते हैं कृष्णमहाराज कहतेहैं ॥

शिष्यप्रश्न

अर्जुनउवाच

सो॰ स्थितप्रज्ञकेलक्षण कहोभगवतनिरधार
बोले अरु कैसे चले बैठे किस परकार

श्लो॰ स्थितप्रज्ञस्यकाभाषा समाधिस्थस्यकेशव
स्थितधीः किंप्रभाषेत किमासीतव्रजेतकिं ५४

टीका स्थितप्रज्ञस्यकाभाषा - स्थितप्रज्ञ का क्या लक्षण है - समाधिस्थस्य - समाधि के विषय स्थित - ज्ञानी के शव - हे केशव - स्थित धी - स्थितबुद्धि - किंप्रभाषेत - कैसे बोलता है किं आसीत् - कैसे बैठता है - व्रजेत् किं - चलता है कैसे ॥

सिद्धान्त यहकि हे केशव हे कृष्ण महाराज ज्ञानी का लक्षण क्या है और ज्ञानी कैसे बोलता है व कैसे बैठता है व कैसे चलता है ॥

गुरुउत्तर

सो॰ सर्वकामना मानसी मनसेभईत्याग ।

आत्म लाभकर तुष्ट है विषयोंमें नहिं राग
स्थितप्रज्ञ तब होत है निश्चै करके जान
प्रथम प्रश्न का उत्तर यः करियो सो परमान

श्री भगवानुवाच ॥

श्लो० प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ५५

टीका प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्- त्यागता है जिस कालके विषय सर्व कामना को- पार्थ मनोगतान्- हे पार्थ मन गत- मन के विषय प्राप्त को- आत्मन्येवात्मना तुष्टः- बुद्धि के विषय आत्म लाभ करके संतुष्ट होता है- स्थित प्रज्ञस्तदुच्यते- स्थित प्रज्ञ तिसकालके विषय कहते हैं- कृष्ण महाराज कहते हैं कि हे अर्जुन जब सर्व कामना मनसे त्याग करके आत्मलाभ करके तुष्ट होताहै तब स्थित प्रज्ञ होता है ॥

सिद्धान्त यह कि जिस समय मन की जितनी कामना हैं छोड़के आत्म लाभ से तुष्ट होके विषयोंमें प्रीती नहीं करताहै उस समय स्थित प्रज्ञ कहते हैं यह लक्षण ज्ञानी का है- यह उत्तर प्रथम प्रश्न का है ॥

दो० अध्यात्मिक आदिक दुःखमे व्याकुल चितनहो
सुखमें इच्छारहितजो बीतराग है सो ॥
भयक्रोध से रहितजो इस्थित भ्रम बिचार
ऐसे निश्चयजानकर साधनकरो प्यार ॥

श्लो० दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहा
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनि रुच्यते ५६

टीका दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः - दुःख के विषय अध्यात्मिक आदिक दुख में उद्विग्न मन- व्याकुल चित नहींहै - सुखेषु विगतस्पृहा - सुख के विषय इच्छा से रहितहै - वीतरागभयक्रोधः - प्रीति और भय और क्रोध से रहित है - स्थितधीर्मुनिरुच्यते - स्थित बुद्धी तिस मुनि को कहतेहैं ॥

सिद्धान्त यह कि जो मुनि अध्यात्मिक आदि दुख में व्याकुल चित्त नहींहै सुख में इच्छा से रहित है राग-प्रीति- वभय- वक्रोध- से रहितहै सो मुनि स्थिति बुद्धी होताहै - ऐसा जानकर साधन करना चाहिये अध्यात्मिक आदिक दुख उसको कहते हैं कि तीन प्रकार का दुख होताहै - १ अध्यात्मिक - २ अधिभौतिक - ३ अधिदैविक । अध्यात्मिक-शरीर के रोग कोकहतेहैं और अधिभौतिक उस दुखको

कहते हैं जो किसी दूसरे से मिले अधिदैविक उस
को कहते हैं जो दुष्ट ग्रह के कारण दुख क्लेश
होता है या पवन पानी से दुख होता है ॥

दो॰ शरीर आदि ले सर्व में प्रीति रहित जो हो
सुख वस्तु के लाभको अस्तुति करै न सो
दुख वस्तु के लाभमें द्वेष करै नहिं चित्त
स्थितप्रज्ञ सो होत है निश्चय जानो मित्त

श्लो॰ यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभं ।
नाभिनंदति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ५७

टीका यः सर्वत्रानभिस्नेह - जो मुनी सर्व वि
षयों के विषय प्रीति रहित है - तत्तत्प्राप्य शुभाशुभ
म् - तिस तिस विषय शुभाशुभ को प्राप्त होकर - ना
भिनंदति न द्वेष्टि - न स्तुति करता है न द्वेष करता है -
सो मुनि स्थितिप्रज्ञ होता है - तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता -
तिसकी बुद्धी आत्मस्वरूप के विषय स्थित होती है ॥

सिद्धान्त यह कि जो मुनि शरीर से आदि लेकर सर्व
विषयों की प्रीति से रहित है शुभ अशुभ दोनोंको प्राप्त
होकर सुख की स्तुति नहीं करता दुखमें द्वेष नहीं कर
ता दोनों में एकरस आनन्द स्वरूप रहता है सो मुनि
स्थितिप्रज्ञ होता है ॥ उत्तर दूसरे प्रश्नका ॥

दो॰ जैसे कछुआ भयसे अंग छिपावे जब।
सर्व भय से रहित हो सुख से बैठे तब॥
तैसे सर्व विषयों से इन्द्रिय उपसंहारे जो।
सुस्थिरप्रज्ञ सो होत है निश्चे करियो सो॥

श्लो॰ यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ५८

टीका यदा संहरते - जिस काल के विषय उपसंहार करता है - चायं - यह पुनः यह ज्ञानी - कूर्मोऽङ्गानीव - कछुआ के अंगों की भांति - सर्वशः - सब प्रकार से - इन्द्रियाणि - इन्द्रियार्थेभ्यः - इंद्रियों को इन्द्रियों के अर्थों से - तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता - तिसकी बुद्धि आत्म स्वरूप के विषय स्थित होती है।

सिद्धान्त यह कि जैसे कछुआ अपने अंग को भय के मारे छिपा लेता है तब निर्भय होकर सुख से बैठा रहता है तैसे यह ज्ञानी जब कछुआ की भांत सब ओर से इन्द्रियों को इन्द्रियों के अर्थ से रोकता है तब बुद्धि आत्मस्वरूप में स्थित होती है॥

शिष्य प्रश्न

दो॰ रोगी पुरुष की इन्द्रियां विषय न करें अहार
ज्ञानी पुरुष की इन्द्रियां रुकें हैं किस प्रकार

टीका हे भगवन् जो पुरुष रोगी होता है तिस की इन्द्रिय अवश्य विषयों को नहीं भोगतीं और ज्ञानी पुरुष की इन्द्रिय किस प्रकार रुकती हैं दया करके कहिये ॥

गुरु उत्तर

दो॰ रोगी पुरुषकी इन्द्रियां विषय न भोगें जो
तृष्णा ध्यानकर युक्त है निश्चय जानो सो
विषय मिथ्या जानकर भया ज्ञानी जो ।
ब्रह्मानंद से तृपित को तृष्णा ध्यान नहो

श्लो॰ विषयाविनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः
रसवर्ज्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ५९

टीका विषया विनिवर्तन्ते - विषय निवृत्त होते हैं - विषयों को नहीं भोगते - निराहारस्य देहिनः आहार से बिना पुरुष - इन्द्रियभोगने से असमर्थ रोगी व तपस्वी की रसवर्ज्जं - तृष्णा के सिवाय - रसोपि - तृष्णाभी - अस्य - इस ज्ञानी की परं दृष्ट्वा - ब्रह्मके साक्षात् करने करके - निवर्तते - निवृत्त हो जाती है ॥

सिद्धान्त यह कि रोगी पुरुष के विषय सिवाय तृष्णा के निवृत्त होते हैं क्योंकि असमर्थ होने के

से रहित - आत्मवश्यै इन्द्रियैः - अपने वश राग द्वेष से रहित इन्द्रियों करिके - विषयान्चरन् - विषयों को भोगता है - प्रसादं अधिगच्छति - सो स्व स्वरूप - अपने स्वरूप की स्थिति को प्राप्त होताहै॥

सिद्धान्त यह कि ऐसा पुरुष जिसका चित्त वशमें है व राग द्वेष से रहित इन्द्रियां अपने बस में हुईहुई तिन्ही इन्द्रियों करिके - अपने बस हुए चित्त व इंद्रियों करिके प्रारब्ध के बस विषयों को भोगता हुआ अपने स्वरूप की स्थिती को प्राप्त होताहै ॥

दो॰ इस्थित चित्त को होतहै सर्वदुःखकी हान ।
निर्मल चितको निश्चै कर इस्थित प्रज्ञ पहिचान

श्लो॰ प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्य्यव तिष्ठते ५५

टीका - प्रसादे सर्वदुःखानां हानि - स्वरूपमें स्थिति होनेतें सर्वदुःखोंकी हानि - अस्योपजायते - इसस्थित चित्तको प्राप्त होतीहै - प्रसन्नचेतसः - प्रसन्न चित्त - निर्मलचित्तको हि निश्चयकरके - आसु - शीघ्र - बुद्धिः पर्य्यवतिष्ठते - बुद्धि सब ओर से आत्मस्वरूपमें स्थित होती है ॥

सिद्धान्त यह कि स्थित चित्तको स्वरूपमें स्थिति होनेसे सर्वदुःखों की हानि होतीहै निर्मलचित्त

को निश्चय करिके शीघ्र सब ओर से आत्मस्वरूप में स्थिती होती है ॥

दो॰ योग रहित को ज्ञान न अरु प्रीत ज्ञान में नाह
ज्ञान आग्रह रहित को होत शानती नाह ॥
बिना शानती ब्रह्मानन्द की लेस कदाचित नाह
ऐसे निश्चै जानकर योग भुलावो नाह ॥

श्लो॰ नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य नचायुक्तस्य भावना
नचाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥

टीका नास्तिबुद्धिः नहीं है ज्ञान- अयुक्तस्य योग से रहित को- नच अयुक्तस्य भावना- च पुनः योग से रहित को प्रीति ज्ञान में नहीं- नच अभावयतः शान्तिः- च पुनः ज्ञान में आग्रह रहित को शान्ति नहीं- अशान्तस्य कुतः सुखम्- शान्त से रहित को कहां सुख ।

सिद्धान्त यह कि योग से रहित को ज्ञान व प्रीति ज्ञान में नहीं होती और ज्ञान में आग्रह रहित को शांति नहीं शान्ति रहित को सुख कहां- ब्रह्मानन्द नहीं होता ॥

शिष्य प्रश्न

दो॰ योग रहित को ज्ञान की कैसे लाभ नहो

इसके हेतु को कहो निश्चै होवै सो

टीका हे भगवन् योग रहित को कैसे नहीं ज्ञान होता इसके हेतु को कहिये जिसमें निश्चै होवे

उत्तर

दो॰ जो मन योग से रहित है इन्द्रियां पीछे जाय
विषय इन्द्रिय को कल्प करबोध बिगारे ताय
जैसे वायु नाव का मारग देय बिगार ॥ ।
तैसे बुद्धी मन हरै निश्चै करो बिचार ॥ ।

श्लो॰ इन्द्रियाणांहि चरतां यन्मनोनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ६७

टीका हि चरतां इन्द्रियाणां - निश्चय क रिके विषयों में विचरनेवाली इन्द्रियों के - यन्म नोनुविधीयते - जो मन पीछे जाता है - तदस्य ह रति प्रज्ञां - उस ज्ञानी की प्रज्ञा को - बुद्धि को मन हर लेताहै - वायुः नावं इव अम्भसि - जैसे जल के विषे वायु नाव को ।

सिद्धान्त यह कि जो मन योग से रहित है इ न्द्रियों के पीछे जाता है विषयों को ध्यान करि के बुद्धि को बिगाड़ देता है - जैसे हवा जल में नाव को सीधी नहीं चलने देती नाव को बहा देती है तैसे

जो मन विषयों के भोगने वाली इन्द्रियों के पीछे जाता है सो मन परोक्ष ज्ञानी की बुद्धि को हर लेता है

दो० सर्व विषयों से इन्द्रियां जिसकी निग्रह हैं
तिसकी प्रज्ञा ब्रह्म में सदा हि तिष्ठित है

श्लो० तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ६८

टीका जिस तें इन्द्री विषय परायण जो मन है ज्ञानी के ज्ञान को बिगाड़ देता है - तस्मात् यस्य महाबाहो - हे अर्जुन तिसी तें जिसके - निगृहीतानि सर्वशः - निगृहीत हैं रुकी हैं सर्व प्रकार - इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः - इन्द्रियां इन्द्रियों के अर्थों से - विषयों से - तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता - तिसकी बुद्धि आत्म स्वरूप में स्थित होती है ॥

सिद्धान्त यह कि जिस तें इन्द्रिय विषय परायण जो मन है ज्ञानी के ज्ञान को बिगाड़ देता है तिस तें हे अर्जुन जिसकी इन्द्रियां विषयों से सर्व प्रकार रुकी हैं तिसकी बुद्धि आत्म स्वरूप में स्थित होती है ॥

दो० आत्मा के अज्ञान को निशा सर्व की जान
तिसमें ज्ञानी जागते निश्चय कर पहचान

कारण विषयों को नहीं भोगता तृष्णा बनी रहती है कि जब रोग अच्छा होजायगा तब विषयों को भोग करेंगे और ज्ञानी पुरुष की तृष्णाभी दूर होजाती है क्योंकि ज्ञानी विषयभोग को मिथ्या जानकर छोड़ देताहै - ज्ञानीकी इन्द्रिय इसप्रकार रुकती हैं - ज्ञानी ब्रह्मानन्द में तृप्तहै कोई तृष्णा उसको व ध्यान नहीं होता जहां देखताहै अपने आपको देखता है ॥

दो॰ यतन करै जोज्ञानमें इन्द्रियां रोकै नांह ।
तिसके मनको इन्द्रियां करें विकारकेमांह

श्लो॰ यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ६०

टीका यततः - जतन करने वाले को - हि यस्मात् अपि - निश्चय करके - कौंतेय - हे अर्जुन - पुरुषस्य - पुरुष को - विपश्चितः - ज्ञानीको - इन्द्रियाणि प्रमाथीनि - प्रमथन करना है स्वभाव जिनका सो इन्द्रियां - हरंति प्रसभं मनः - हर लेती हैं हठ से मन को ॥

सिद्धान्त यहकि जिसते निश्चयकरके हे अर्जुन जतन करने वाले पुरुष ज्ञानी को इन्द्रियां प्रमथन

करनाहैं स्वभाव जिनका हठ से मनको हरलेतीहैं जो कोई ज्ञान में जतन करता है इन्द्रियों को नहीं रोकता तिसके मनको इन्द्रियां ज्ञानके ओर नहीं जानेदेतीं विकारमें डालदेती हैं ॥

सो॰ सर्वइन्द्रियको रोककर आत्म परायण जो
स्थित प्रज्ञ सो होतहै निश्चय जानो सो।

श्लो॰ तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः
वशेहि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ५१

टीका जिसतें इन्द्रियां मनको हर लेतीहैं तिसतें- तानि सर्वाणि - तिन सर्व इन्द्रियों को- संयम्य- संयम करके- रोक करके- युक्त आसीत् मत्परः- स्थित आत्म परायण हुआ हुआ स्थित होताहै वशेहि- वशमें हैं- यस्येन्द्रियाणि- जिसकी इन्द्रियां- तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता- तिसकी बुद्धि आत्मस्वरूपमें स्थित होती है ॥

सिद्धान्त यहकि जिसतें इन्द्रियां मन को हरलेती हैं तिसतें जो कोई सर्व इन्द्रियों को रोक के आत्म परायण हुआ हुआ स्थित होताहै और जिसकी इन्द्रियां वशमें हैं उस मनुष्य की बुद्धि आत्मस्वरूप में स्थित होती है ॥

दो ध्यानकरै जो विषयका प्रीति विषयमें हो
काम प्रीति से होत है क्रोध काम से हो
अविवेक होत है क्रोधसे अविवेकभमावे चित्त
चितभरमन से ज्ञानका नाश होवे निश्चित
स्मृति ज्ञानके नाशसे नाशै बारम्बार ।
विषय ध्यानके करनसे सर्व अनर्थ विचार

श्लो ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते ६२

टीका ध्यायतो विषयान्पुंसः- विषयोंके ध्यान करनेवाले पुरुषको- संगस्तेषूपजायते- प्रीति तिसके विषय उत्पत्ति होतीहै- संगात्संजायते कामः- प्रीति से उत्पन्न होताहै काम- कामात्क्रोधोभिजायते- काम से क्रोध उत्पन्न होताहै ॥

श्लो क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ६३

टीका क्रोधाद्भवति संमोहः- क्रोधसे होताहै अविवेक- संमोहात्स्मृतिविभ्रमः- अविवेकसे स्मृति विभ्रम- चित्त भ्रम होताहै- स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो- चित्तके भ्रमने से बुद्धि- ज्ञानका नाश होता है बुद्धिनाशात्प्रणश्यति- ज्ञानके नाश से- स्मृतिज्ञान

जिस वृत्तिमें ज्ञान होताहै तिस वृत्ति के नाश होने से नाश होताहै - वारम्वार नाश होताहै ।

सिद्धान्त यहकि जिस पुरुषको विषयोंके ध्यान से प्रीति विषयोंमें होती है प्रीति से काम काम से क्रोध क्रोधसे अविवेक - अच्छे बुरे का न विचार करना - अविवेक से चित का भ्रमना चित्तभ्रमने से वृत्ति ज्ञानका नाश होताहै वृत्ति ज्ञानके नाश से वारम्वार नाश होताहै जन्ममरण में पड़ा रहताहै मुक्त नहीं होता प्रयोजन यह कि विषयों के ध्यान करने वालेको सर्व अनर्थ प्राप्त होताहै इसलिये किसी विषयको ध्यान करना योग्य नहीं है मुमुक्षु को सिवाय अपने आनन्दस्वरूपके उत्तर तीसरे प्रश्नका ॥

दो० मन इन्द्रियको जीतकर भयाज्ञानी जो
रागद्वेष से इन्द्रिय रहित भया है सो
प्रारब्धके वशहो विचरे विषया मांह
स्वस्वरूपकी स्थिती प्राप्तहोवे तांह

श्लो० रागद्वेष वियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ६४

टीका तुपुनः विधेयात्मा वशी चित्ता पुरुषः अपने वसहै चित ऐसा पुरुषजोहै - रागद्वेषवियुक्तैः रागद्वेष

आत्मा के अज्ञान में सर्व जागते जान ॥
सो ज्ञानी की निसा है निश्चै कर परमान ।
अज्ञानी सर्व व्यवहार को करता बिना विवेक
ज्ञानी सर्व व्यवहार को करता सहित विवेक

श्लो० या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९

टीका या निशा सर्वभूतानां - जो रात सब भूतों की - प्राणियों की है - तस्यां जागर्ति संयमी - तिसके विषय जागते हैं संयम करने वाले - ज्ञानी - यस्यां जाग्रति भूतानि - जिसके विषय सर्व भूत - प्राणी जागते हैं - सा निशा पश्यतो मुनेः - सो रात देखने वाले - साक्षात् करने वाले मुनि की है ॥

सिद्धान्त यह कि जिस अज्ञान में सर्व भूत सोते हैं तिसके विषय ज्ञानी जागते हैं - एक ब्रह्म देखते हैं ब्रह्म के सिवाय अज्ञानियों की भांत दूसरी वस्तु नहीं देखते और जिसके विषय सर्व भूत जागते हैं तिसमें ज्ञानी सोते हैं - अज्ञानी जिस अज्ञान को सच जानते हैं ज्ञानी तिस अज्ञान को मिथ्या जानते हैं अ-ज्ञानी आत्मा को नहीं जानते हैं ज्ञानी आत्मस्वरूप को जानते हैं सोई अज्ञानी का सोना व ज्ञानी का जागना

है अज्ञानी जगत को सच मानते हैं ज्ञानी मिथ्या मान
ते हैं सोई अज्ञानी का जागना ज्ञानी का सोना है-
अज्ञानी सर्व व्यवहार को बिना विवेक करता है और
ज्ञानी सर्व व्यवहार को विवेक सहित करता है ॥

दो॰ जैसे नदियां जाय समुद्र में करैं विकार न को
मरयादा छोड़े नहीं सदा समुंद्र सो ॥=॥
तैसे काम अज्ञानी के आये ज्ञानी के माह
विकार करन को सकय नहीं निश्चै जानो ताह
ज्ञानी आप्त काम जो मुक्ती पावे सो ॥=॥
अज्ञानी कामकार युक्त सो मुक्त कभी ना हो

श्लो॰ आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्र-
विशन्ति यद्वत् । तद्वत्कामा यं प्रविश-
न्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ७०

टीका आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं - नभरने वा
ला अचल स्थिर - समुद्रमापः प्रविशन्ति - समुद्र
को सर्व जल प्रवेश करते हैं - यद्वत् - जैसे - तद्वत् -
तैसे - कामायं प्रविशन्ति - कामना इस ज्ञानी को
प्रवेश करते हैं - सर्वे - सब - सशान्ति माप्नोति - सो
ज्ञानी शान्ति को - मुक्ति को प्राप्त होता है न काम का
मी - कामना करने वाले को मुक्ति नहीं होती ॥

सिद्धान्त यह कि जैसे समुद्र को कि कहींपर हटता नहीं अचल तिष्ठ रहता है सर्व नदियों के जल आयकर मिलते हैं समुद्र ज्यों का त्यों रहता है कुछ बिगड़ता नहीं - तैसे सर्व कामना - सर्व भोग बिना इच्छा किये प्रारब्ध के वश ज्ञानी को प्राप्त होताहै उसको भोगता हुआ ज्ञानी मुक्त होजाता है और अज्ञानी जो भोगों की इच्छा करता है मुक्त नहीं होता

दो॰ सर्व कामना त्यागकर अनिच्छित विचरेजो
हंकार ममकार से रहितहो मुक्ती पावे सो ॥

श्लो॰ विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरतिनिस्पृहः
निर्ममो निरहंकारः सशांति मधिगच्छति ७१

टीका विहाय कामान्यः - त्याग करके कामना कोजो - सर्वान् - सर्व को - पुमान - परम हंस चरति - विचरते हैं - निस्पृहः - इच्छा रहित - निर्ममो निरहंकारः - ममता से रहित अहंकार से रहित हुआ हुआ - सशान्ति मधिगच्छति - सो परमहंस शान्ति को शीघ्र प्राप्त होता है ॥

सिद्धान्त यह कि जो परमहंस सर्व कामना को त्यागकरके मेरा शरीर है मैं शरीर हूं इस ममता अहंकार से रहित विचरते हैं सो परमहंस

मुक्ति को प्राप्त होते हैं- यह उत्तर चौथे प्रश्न का है ॥

दो॰ यह जो ब्राह्मी इस्थिती भगवत कही निरधार
अहं ब्रह्म अस्मि निश्चय करो भगवत कहैं पुकार
ऐसे निश्चयवान को मोह कभी ना हो ।
निश्चै करके अन्त कालमें मुक्ती पावे सो
अंतकालमें इस्थिती जिसको प्राप्त हो
सोभी मुक्ती पावे है निश्चय जानो सो
अंतकाल की इस्थिती मुक्त करै है जो
सदा इस्थिती यो करै कैसे मुक्त न हो

श्लो॰ एषाब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनं प्राप्य विमुह्यति
स्थित्वास्यामंत कालेपि ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ६९

टीका एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ- हे पार्थ यह जो ब्राह्मी स्थिती है- नैनं प्राप्य विमुह्यति-एनं प्राप्य- इसको प्राप्त हो करके मोह को नहीं प्राप्त होता-सब सिद्धान्त को जान जाता है- अज्ञान बाकी नहीं रहता- स्थित्वा- स्थित होकरके- अस्यां इस ब्राह्मी स्थिती के विषय- अन्तकालेपि- अन्तकाल के विषय- ब्रह्म निर्वाणं ऋच्छति- ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त होता है- ब्रह्म निर्वाण त्रिपुटी से

रहित को कहते हैं - जहां ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय कुछ नहीं है उसको ब्रह्मनिर्वाण कहते हैं ॥

सिद्धान्त यह कि हे पार्थ यह दूसरी अध्याय भगवतगीता के विषय जो ब्राह्मी स्थिति है उसको प्राप्त होकर के मोह को नहीं प्राप्त होता है - अज्ञान बाकी नहीं रहता यदि इस ब्राह्मी स्थिति के विषय अन्तकाल में स्थित होकर के भी ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त होता है तब सदा जो इसमें स्थित रहता है - मैं ब्रह्म हूं ऐसा सदा जानता है उसकी मुक्ति क्यों न होगी - अवश्य होगी ॥

इति श्री भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे सांख्य योगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

दोहा

यह गीता भकरी है कथा ज्ञान में जान ॥:॥
बिन गीता कुछ है नहीं कथन श्रवण परमान
पद अरथ अरु भाव अरथ भया नहीं व्याख्यान
किंचित मनन करा है निश्चै जान सुजान ॥

इति ज्ञान कथायां श्री भगवद्गीता प्रकाशे चतुर्थ सं०

हरिॐतत्सद्ब्रह्मणेनमः

अष्टावक्र प्रकर्णी प्रारम्भः ॥

दोहा

यथातथा उपदेशसे मुक्त होय शुद्धबुद्ध
सर्वायु जिज्ञासा कर जाय नरक दुर्बुद्ध

श्लो० यथा तथोपदेशेन कृतार्थः सत्त्वबुद्धिमान्
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति १

टीका यथातथोपदेशेन - जैसे तैसे उपदेश करके सत्त्व बुद्धिमान - मुमुक्षु कृतार्थ होताहै इससे परे - असत बुद्धिवाला जन्म से मरण पर्यन्त भी जिज्ञासा करता हुआ तिसी जिज्ञासा के विषय मोह को - संसार को प्राप्त होताहै

सिद्धान्त यह कि जो कोई शुद्धबुद्धि है उपदेश मात्र से मुक्त होता है और जो कोई दुर्बुद्धि है जन्म भर महात्मा की सत्संगति व ज्ञान की इच्छा करता रहता है तब भी मुक्त नहीं होता सारांश यह कि जो विषयों में प्रीति करके विषयों की प्राप्ति का साधनकर्म

करता है सो बद्ध होता है और जो विषयों की प्राप्ति का साधन कर्म नहीं करता ज्ञान का साधन करता है वह मुक्त होता है ॥

दो॰ विषयों में वैराग जो यही मुक्त कर जान
प्रीति करै जो विषय में सदा बंध पहिचान
मुक्त बंध का ज्ञान यह निश्चय करके जान
जैसे तेरी इच्छा तैसे कर परमान ॥

श्लो॰ मोक्षो विषय वैरस्यं बंधो वैषयिको रसः
एतावदेव विज्ञानं यथेच्छसि तथा कुरु २

टीका मोक्षो विषय वैरस्यं- विषयों में प्रीति न करना मोक्ष है - विषयों में प्रीति करना बंध है - इतना ही मुक्ति बंधन का ज्ञान है जैसी इच्छा तुम्हारी हो तैसे करो ॥

सिद्धान्त यह कि किसी वस्तु में प्रीति न करना यही मुक्ति है और प्रीति करना यही बंधन है और बंधन मुक्ति कोई नहीं है क्योंकि जब प्रीति व इच्छा होगी तब उसके भोगने के लिये जन्म लेना पड़ेगा और दुख पावेगा ॥

दो॰ आत्मज्ञान विना पुरुष कों मूक करै निश्चित
आत्मपुरुष को जड़ करै निश्चै जानो मित्त ।

आत्म ज्ञानही करैहै कर्मो से उपराम
सुद्धी आत्मरूपमें जाय करै विश्राम
भोगी आतमज्ञानको निस्चै करै त्याग
मृगतृष्ना के नीरमें करै रात्तदिन राग

श्लो॰ वाग्मिप्राज्ञं महोद्योगं जनंमूकंजडालसं
करोति तत्त्वबोधोयमतस्त्यक्तोबुभुक्षुभिः ३

टीका — यह आत्मज्ञान बहुत बात करने वाले पुरुष को गूंगा और बहुत जानने वाले को जड़ और बहुत उद्यम करने वाले- कर्म कांडी पुरुष को आलसी करता है तिसीसे भोगकी इच्छाकरने वाला पुरुष इस आत्मज्ञान को त्याग करता है ॥

सिद्धान्त यह कि आत्मज्ञान से सब इच्छा छूट जाती है क्योंकि जो सुख अपने स्वरूप की प्राप्ति में है वैसा आनन्द किसी में नहीं है और भोगी सदा भोगकी इच्छा में पड़ा रहता है इच्छा कम नहीं होती ॥

दो॰ ना तुम देह न तेरा देह करताभोक्तानाह
चैतन्यरूप साक्षी सदा असंग देहके मांह
देह अभिमानसे रहितहो विचरो सुखके साथ
यह सिद्धान्त वेदका करो आपने हाथ

श्लो	नत्वं देहो नते देहः कर्त्ता भोक्ता नवाभवान
चिद्रूपोसि सदासाक्षी निरपेक्षः सुखंचर ६

टीका	हे शिष्य तुम देह नहीं हो नतेरा देह है क्रिया का करनेवाला व विषयों को भोगनेवाला तुम नहीं हो तुम चैतन्यरूप सदा सबके जानने वाले हो देह का उपेक्षा करके देह का किसी प्रकार अभिमान न करिके सुखपूर्वक विचरो ॥

सिद्धान्त यह कि कर्त्ता भोक्ता देह है तुम देह नहीं हो सबके साक्षी हो किसी वस्तु की वासना न करिके सुखके साथ विचरो ॥

दो	राग द्वेष मन का धरम तेरा धरम न को
साक्षी चैतन्य रूपको सुखी जानकर हो

श्लो	राग द्वेषौ मनो धर्मौ नमनस्ते कदाचन
निर्विकल्पोसि बोधात्मा निर्विकारः सुखंचर ७

टीका	राग द्वेष मन का धरम है तुम्हारे को कदाचित मनका संबंध नहीं है- तुम मन नहीं हो निर्विकल्प- संकल्प विकल्पसे रहित हो चैतन्यरूप हो- विकार से रहित हो- कोई विकार काम क्रोध आदिक तुमको नहीं है तुम सुख पूर्वक विचरो ॥

सिद्धान्त यह कि रागद्वेष संकल्प विकल्प मनका धर्म

है तुम्हारा धर्म नहीं है तुम आपको चैतन्य रूप आ
से भिन्न जानकर सुखी हो ॥

दो　सर्वभूतमें आत्मा अधिष्ठान रूप कर जान
सर्वभूत अध्यस्तकर आत्मा में पहिचान
अहं ममकार से रहित जो सुखी होवते सो
इस निश्चयको दृढ़कर सुखस्वरूप तुम हो

श्लो　सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि
विज्ञाय निरहंकारो निर्ममस्त्वं सुखीभव ६

टीका　आत्माको अधिष्ठान रूप सर्वभूतके
विषय जान व सर्वभूत को अध्यस्त आत्मा के विषय
जान अहंकार ममता से रहित - मैं देह हूँ व मेरा
देह है इससे रहित तुम सुखी हो ॥

सिद्धान्त यह कि आत्मा सर्वका अधिष्ठान है व
सर्व चराचर आत्मा में अध्यस्थ है- जैसे रस्सीमें सर्प
रस्सी अधिष्ठान है सर्प अध्यस्त है सो आत्मामें हूँ
ऐसा निश्चय करके अहं मम से रहित होकर तुम
सुखी हो ॥

सो.　जिस अधिष्ठानमें विश्व यह तरंग सागर वत आभि
सो अधिष्ठान तो तुम्ही हो जिससे होवो अभिन्न ।
चैतन्य रूप जो आत्मा तेरा रूप है सो ॥ ३ ॥

इसलें संशय त्यागकर संताप रहित तुम हो

श्लो विश्वं स्फूर्तियत्रेदं तरंगा इव सागरे ॥ः।

तत्वमेव न संदेह श्चिन्मूर्ते विज्वरोभव ७

टीका यत्र जिस अधिष्ठान के विषय-इदं विश्वं-यह विश्व- जगत तरंग सागर के न्याईं अभिन्न स्फुरण होता है-भिन्न दिखलाई देता है तत् त्वं एव-सो अधिष्ठान तुम्हीं हो संदेह नहीं है हे चैतन्य स्वरूप-विज्वरो भव-गत सन्ताप-अध्यात्मिक आदिक तीनों सन्ताप से रहित तुम हो-१ अध्यात्मिक-२ अधिभौतिक-३ अधिदैविक-यह तीन ताप हैं-ज्वर शूल आदिक शरीर के रोग को अध्यात्मिक कहते हैं प्राणी को प्राणी से दुख होना अधिभौतिक है किसी ग्रह व हवा व आग पानी आदि से दुख होना अधिदैविक ताप है ॥

सिद्धान्त यह कि जिस अधिष्ठान में यह जगत अभिन्न है सो अधिष्ठान तुम्हीं हो चैतन्य रूप जो आत्मा है सोई तुम्हारा रूप है इसलें संशय को त्याग करके तीनों ताप से तुम रहित हो ॥

सो श्रद्धा कर शिष्य श्रद्धा कर मोह करो नाहि को

जीव ईश्वर दोउ तुम्हीं हो निश्चै करियो सो

श्लो० श्रद्धत्स्वतात् श्रद्धत्स्व नात्र मोहं कुरुष्व भो
ज्ञानस्वरूपो भगवान् आत्मात्वं प्रकृतेःपरः ८

टीका अद्धाकर शिष्य श्रद्धाकर इसके विष
य मोहको मतकरो - भ्रम मत करो प्रकृतिकाप्रका-
शक भगवान् - तत् पद ईश्वर तुम हो आत्मा - त्वं
पद जीव तुम हो ॥

सिद्धान्त यह कि हे शिष्य श्रद्धाकर भ्रम मतकर
चैतन्यस्वरूप तत् पद ईश्वर त्वं पद जीव दोनों तुम हो

दो० आवेजावे इस्थित रहै युक्त इन्द्रिय देह
आवेजावे न आत्मा सोच करो क्यों एह

श्लो० गुणैः संवेष्टितो देहस्तिष्ठत्यायाति याति च
आत्मा न गंता नागंता किमेनमनुशोचसि ९

टीका स्थूलदेह इन्द्रियों करके युक्त स्थित
रहता है जाता है उत्पत्ति होता है - आत्मा न जा
ता है न आता है ऐसे आत्मा को क्यों सोच क-
रता है ॥

सिद्धान्त यह कि मैं मरूंगा स्वर्ग जाऊंगा नर्क
जाऊंगा ऐसा सोच मत करो क्योंकि आत्मा सत
चित आनंद स्वरूप है उसमें आना जाना नहीं है ॥

दो॰ कल्प पर्यन्त यदि देह रहे तुमरी वृद्धी को
नाश होवे यदि देह अभी तुमरी हानि नहो
तुम से भिन्न कर देह जो हानि वृद्धि के सहित
चैतन्य आत्मा रूप तुम हानि वृद्धि से रहित

श्लो॰ देहस्तिष्ठतु कल्पांतं गच्छत्वद्यैव वापुनः
क्व वृद्धिः क्व च वा हानि स्तव चिन्मात्ररूपिणः २०

टीका देह कल्प के अन्त तक - प्रलयतक स्थित रहे तुम्हारी वृद्धि कहां अथवा अभी नाश होजाय तुम्हारी हानि कहां तुम चैतन्य मात्र रूप हो ॥

सिद्धान्त यह कि देह प्रलयतक बनी रहे वा अभी नाश होजाय तुम चैतन्य रूप हो तुम्हारी वृद्धि व हानि कहां है - नहीं है ॥

दो॰ चैतन्य अनन्त समुद्र तुम विश्व वीचि तुम मांह
उदै अस्त होवे सदा हानि वृद्धि कुछ नाह ।

श्लो॰ त्वय्यनंत महांभोधौ विश्ववीचिः स्वभावतः
उदेतु वास्तमायातु न ते वृद्धि र्न वा क्षतिः २१

टीका तुम अनन्त समुद्र हो विश्व रूपी तरंग तुम्हारे विषय स्वभाविक है उत्पत्ति होता है लय होता है तुम्हारी वृद्धि अथवा हानि नहीं है ॥

सिद्धान्त यह कि जैसे समुद्र जिसका अन्त नहीं है उसमें तरंग स्वभाविक है उत्पत्ति होते हैं व लय होते हैं समुद्र ज्यों का त्यों बना रहता है कुछ घटता बढ़ता नहीं तैसे तुम चैतन्य अनन्त समुद्र हो यह विश्व - जगत - स्वभाविकही तुम्हारे विषय उत्पन्न होता है - लय होता है - तुम्हारी कुछ हानि वृद्धि नहीं है ॥

दो० शिष्य चिन्मात्र रूप तुम तुम बिन जगत न को ।
त्याग ग्रहण की कल्पना किस विध किसमें हो ॥

श्लो० तात चिन्मात्ररूपोसि न ते भिन्नमिदं जगत् ।
अतः कस्य कथं कुत्र हेयोपादेय कल्पना १२ ॥

टीका हे शिष्य चैतन्य मात्र रूप तुम हो तुम्हारे से भिन्न जगत नहीं है इसीसे किसको किस प्रकार किस जगह त्याग ग्रहण की कल्पना कीजावे - पूर्ण आपही आप हो किसकी कल्पना करते हो ॥

दो० निर्मल शान्त अरु नाश रहित चिदाकाश एक तुम ।
जन्म कर्म अहंकार मल संभव नाहीं तुम ।

श्लो० एकस्मिन्नव्यये शान्ते चिदाकाशे मलेत्वयि ।
कुतोजन्म कुतः कर्म कुतो हंकार एवच १३ ॥

टीका सजातीय व विजातीय स्वगत भेद से रहित नाश से रहित शान्त चैतन्य आकाश निर्मल जो तुम हो तेरे विषय - वस्तुतः निश्चय करके कहां जन्म कहां कर्म कहां अहंकार है - नहीं है ॥

सिद्धान्त यह कि जब तुम अव्यय है तुम्हारा नाश नहीं है तब तुम्हारे विषय जन्म नहीं है और जब तुम चिदाकाश - अमल हो तब तुम्हारे विषय अहंकार रूपी मल नहीं है क्योंकि तुम सजातीय व विजातीय स्वगत भेद से रहित हो - आकाश तीन हैं एक चिदाकाश जिसमें कार्य कारण सर्व अध्यस्त हैं - दूसरा भूत आकाश जिसमें पांचोंभूत कार्य के सहित हैं - तीसरा मन आकाश जो सर्व कल्पना का अधिष्ठान है और आकाश - पोलार को कहते हैं - तो आकाश में क्रिया व कर्म नहीं है

दो० जो देखो इस सर्व में तुम बिन भासे नाह।
जैसे भूषण स्वर्ण के बिना स्वर्ण कुछ नाह

श्लो० यत्त्वंपश्यसि तत्रैकस्त्वमेव प्रतिभाससे
किं पृथग्भासते स्वर्णात्कटकांगद नूपुरं १४

टीका जो तुम देखते हो तिसके विषय एक तुम्ही हो तुम्हारा ही प्रतिभास है - प्रतिभास -

प्रकाश जैसे धूप - घाम सूर्य का प्रतिभास है - प्रतिभास उसको कहते हैं कि कोई दूसरी वस्तु नहो वही मुख्य वस्तु दूसरी वस्तु कहने में आवे जैसे भूषण कोई वस्तु नहीं वास्तव में सुवर्ण है भूषण कहा जाता है सुवर्ण का प्रतिभास भूषण है - भान होते हैं सोना से पृथक् - भूषण भिन्न नहीं भान होते हैं ॥

सिद्धान्त यह कि जो तुम देखते हो एक तुम्ही हो तुम्हारा प्रतिभास है जैसे भूषण में एक सुवर्ण ही है सुवर्ण से अलग भूषण नहीं है ॥

दो० यह हम यह नाहीं हम इति त्याग विभाग
सर्व आत्मा इति निश्चय कर सुखी संकल्पत्याग

श्लो० अयं सोहमयं नाहं विभाग मिति संत्यज
सर्वमात्मेति निश्चित्य निः संकल्पः सुखीभव ॥ २५

टीका यह क्रम कल्ह भूलगये थे आज करता हूं - अयं-नाहं - यह देवदत्त है मैं नहीं हूं इस विभाग को - भेद को भले प्रकार त्याग सर्व आत्मा है ऐसा निश्चय करके संकल्प से रहित हुआ हुआ सुखी हो ॥

सिद्धान्त यह कि यह मैं हूं यह मैं नहीं हूं

इस भेदको त्याग करके पूर्ण एक ब्रह्म जानकर अभेद होकर सुखी हो ॥

दो॰ विश्व तेरे अज्ञानकर परमारथ एको तुम ।
तुम बिन संसारी नहीं असंसारी बिना न तुम

श्लो॰ तवैवाज्ञानतो विश्वं त्वमेकः परमार्थतः
त्वत्तोन्यो नास्ति संसारी नासंसारी च कश्चन ६

टीका तेरे अज्ञानतें विश्व है परमार्थतें-सत्यकरिके एक तुम्ही हो तुम्हारे से संसारी-जीव भिन्न नहीं है अपुनः कोई तुम्हारे से पृथक् असंसारी-ईश्वर नहीं है ॥

सिद्धान्त यह कि त्वंपद जीव तत् पद ईश्वर दोनों तुम्ही हो ॥

दो॰ विश्व भ्रांति मात्र है सत्य असत्य कुछ नाह
ऐसे निश्चयवानको कोई वासना नाह ।
चैतन्य आपको निश्चय कर शांत होते जान
बिना ज्ञानके शांती करियो ना परिमान

श्लो॰ भ्रांति मात्र मिदं विश्वं न किंचिदिति निश्चयी
निर्वासन स्फूर्तिमात्रो न किंचिदिव शाम्यति ७

टीका भ्रान्ति मात्र यह विश्व है किंचित सत असत् कुछ नहीं है ऐसा निश्चयवाला वासना

से रहित होताहै - स्फूर्तिमात्र - चैतन्य मात्र मैं हूं ऐसा निश्चय करके न किंचित् कीन्याई शान्त होताहै - शेष विशेष - कारणकार्य सब को लय करके - नाश करके शान्त होता है ॥

सिद्धान्त यह कि जिस किसीको ऐसा निश्चय होताहै कि जगत भ्रान्ति मात्रहै वह मनुष्य अपने को चैतन्यमात्र निश्चय करके न होने की तरह शान्त होता है क्योंकि जहांजो वस्तु नहींहै उस वस्तु के लिये उसजगह कोई उपाय भी नहीं है उसी प्रकार वह मनुष्य सब उपाधि से रहित शान्त होता है ॥

दो॰ संसार समुद्र के आदि अन्त मध्य एक तुम जो
बंध मुक्त तुमको नहीं विचरो कृतकृत्य हो

श्लो॰ एक एव भवांभोधावासीदस्ति भविष्यति ।
नतेबंधोस्ति मोक्षोवाकृत कृत्यः सुखंचर १८

टीका संसार रूपी समुद्रके आदि मध्य अन्त के विषय एक तुम हो तुम्हारे को बंधन नहीं है अथवा तुम्हारे को मोक्ष नहीं है कृत्य कृत्य होकर के - मोक्षसाधनको त्यागकरके सुख पूर्वक विचरो ॥

सिद्धान्त यह कि आदि मध्य अन्त एक तुम ही हो तुमको बंधन मोक्ष नहीं है सब साधनों को त्याग करके सुखी हो ॥

दो॰ संकल्प विकल्प कर चित्तको छोभ करो तुम नाह
चिन्मात्र तुम रूप हो इसमें भरमो नाह ॥ ॥
संकल्प विकल्प को त्यागकर स्वात्म आनंद माह
सुख पूर्व तिष्ठित रहो करो विकल्प कुछ नाह ॥

सो॰ मा संकल्प विकल्पाभ्यां चित्तं छोभय चिन्मय
उपशाम्य सुखं तिष्ठ स्वात्मन्यानंद विग्रहे १८

टीका हे चैतन्य मूर्ति शिष्य तुम संकल्प विकल्प करके चित्तको मत छोभ कर- व्याकुल मत कर शान्त होकर - संकल्प विकल्प से रहित होकर के अपने आत्मानंद मूर्ति के विषय सुख पूर्वक स्थित हो ॥

सिद्धान्त यह कि हे शिष्य संकल्प विकल्प करके व्याकुल चित्त मत हो अपने आत्मानंद में स्थित रहो चैतन्य मात्र तुम्हारा रूप है इसमें किसी प्रकार विकल्प- शंका मत करो ॥

दो॰ सर्व ध्यानको त्यागकर किंचित हृदे न धार
आत्मरूप तुम मुक्त हौ काहे करैं विचार

श्लो॰ त्यजैव ध्यानं सर्वत्र मा किंचिद् हृदि धारय ।
आत्मा त्वं मुक्त एवासि किं विमृश्य करिष्यसि ॥ २०॥

इति अष्टावक्रे तत्त्वोपदेशः विंशतिकं ।

टीका सर्व के विषय ध्यान को त्याग किंचित् हृदय के विषय मत धार-मनन मत कर आत्मा तुम हो मुक्त रूप भी तुम हो क्यों विचार करते हो ॥

सिद्धान्त यह कि हे शिष्य कोई ध्यान मत करो आत्मा तुम्ही हो किसका विचार करते हो कोई दूसरा सिवाय तुम्हारे नहीं है ॥

दो॰ अष्टावक्र कर्ता यह ग्रंथ ज्ञान में जान ।
गुरु वाक्य बिन है नहीं कहन श्रवन परमान ॥
काशी से दस कोस पर गंगा तीर के मांह ।
ढिंगुलर नाम एक गांव है कुटी बनी है तांह ॥
प्रारब्ध के वेग से आया ढिंगुलर जान ।
ईश्वर के प्रेरे सभी भये अनुकूल पहिचान ॥
नेत्र व्यथा के दोष से बनै विचार नाहि नित ।
यह मनन कथा रची खाली बैठ कर चित्त ॥
ग्रंथ ज्ञान को श्रोद कर मोह सीत भयो दूर ।
परमानंद प्राप्त भयो घट घट में भरपूर ॥
संवत उन्नीस से बीस में ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष मांह

कंथज्ञान पूरनभयो कुटी हिंगुलर माह

टीका यह बीस श्लोक तत्वोपदेश श्री अष्टावक्र महाराज का है अगले महात्मा ने जो कुछ कहा है उस वृद्ध वाक्य के बिना किसी के कहने का प्रमाण नहीं होता इसलिये यह अष्टावक्र प्रकर्ण ज्ञानकंथा में कहागया है जो कोई उसको बिचार करेगा आनंद स्वरूप को प्राप्त होगा ॥

इति ज्ञानकंथायां अष्टावक्र प्रकर्णपंचमं

समाप्तम्

हरिॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः ॥

जगत अत्यंता भाव मुक्त आनंद स्वरूप प्रकर्ण आरंभः

शिष्य प्रश्न ॥

दोहा

जैसे अगनि के सत होने में उष्नतनाश न होय
तैसे जगत के होने में सुख की गंध न कोय ॥
वसिष्ठ मुनी से आदि लै व्यासदेव सुखदेव
मुक्ति होय के ब्रह्म में भये अभेद सभेव
किंचित् शेष संसार का भया अभाव न कोय
मुक्ति आनंद स्वरूप है कैसे निश्चै होय

टीका प्रश्न

हे भगवन् जैसे अग्नि के सत्य होने में गरमी का नाश नहीं होता तैसे जगत के होने में सुख की गंध नहीं है क्योंकि जैसे जिस मकान में एक जगह भी अग्नि होगी तो सारा घर गरम रहेगा तैसे जब किंचित्

भी जगत रहेगा तब दुःख अवश्य होगा- ब्रह्मके किसी एक अंश मेंभी जगत होगा तो ब्रह्म आप्तरूप को सुख न होगा - वशिष्ठ- वामदेव- शुकदेव आदिक मुनि मुक्त होकर सब लोग ब्रह्म में अभेदरूप हैं संसार का एक रेसभी अभाव नहीं हुआ जैसा का तैसा बना है तब यह कैसे निश्चय होय कि मुक्त आनंद स्वरूप है कृपा करके आप कहें जिसमें निश्चै होय कि मुक्तिहोनेसे जगत का अभाव होताहै- जगत नहीं रहता ॥

गुरु उत्तर- दोहा

अष्टावक्र गकार्णमें कहा बहुत परकार ।
सिद्धान्त योगबशिष्ठका सुनो शिष्य करि प्यार
मृगतृष्णाके नीरसे सींच्यो नभ दिन रात ।
कमल बोरउस बागमें सुनो शिष्य एकबात
कमलों के शुभगंध से पूरताभया संसार ।
इसविध जगत ब्रह्ममें बिनबिचार नहिंसार
कहन मात्र यहजगतहै अत्यंताभाव विचार
निश्चै करिके जानियो कहैं बशिष्ठ पुकार

टीका हे शिष्य अष्टावक्र गकार्ण में बहुत प्रकारसे आगे कहाहै अब योगबशिष्ठका सिद्धान्त

अत्यंताभाव जो रामचंद्र से कहा है कहते हैं चित्त एकाग्र करिके सुनो ॥

श्लोक योगवाशिष्ठ

मृगतृष्णिकाम्भसि जलं गृहीत्वा गगनार
विंदं विनिच्य कश्चित् ॥ पश्चात्सुगंधि
वन पुष्पलाना भेद सर्वे चात्र जगत प्रति
ष्ठेति ॥१॥

टीका वस्तुतः जैसे कोई पुरुष मृगतृष्णा के जलको लेकर के आकाशरूपी बागको सींचता भया और पीछे सुगंध करके युक्त बन कमलों का होता भया हे शिष्य- हे रामचंद्र इसी प्रकार ब्रह्म के विषय जगत की स्थिती है

दो- यथा रज्जु में सर्प तथा सीपी में रूपा ।
नील गगन के माह स्वर्ण में भूषण अनूपा
जैसे लोहा शस्त्र माह पानी में तामर भासे
तैसे जगत है ब्रह्म भरमकर भव्य होभासे
भरम बलाय बड़ी भरम कर रज्जु काटे ।
भरम गये वह सर्प भय के सहित नभासे
सिद्धान्तसार वेद का यंभू जा है पुकार ।
अज्ञान भरम के नाशका मुक्ति नाम बिचार

टीका   जब शिष्य को शंका हुई कि मुक्ति आनंद स्वरूप कैसे है और संसार का अभाव कैसे होता है तब पहले गुरु ने अजातिवाद का उपदेश किया कि जैसे मृगतृष्णा के जल से आकाश के बाग़ को कोई मनुष्य सींचे और वहां सुगंधित फूल फूले तैसे ब्रह्म में यह जगत है विचार करने से जाना जाता है कि जब मृगतृष्णा में जल नहीं है और आकाश खाली है धरती नहीं है तब कहां बाग सींचा जाय और फूल और सुगंधित फूल उत्पन्न हो केवल मन की कल्पना है तैसे एक ब्रह्म पूर्ण है जगत कोई वस्तु नहीं है जिसका नाश हो केवल वाणी के कहने मात्र जगत है इसको अजातिवाद कहते हैं कि जिसकी उत्पत्ति न हो ॥ यह उपदेश उत्तम अधिकारी के लिये है ॥

फिर शिष्य को शंका हुई कि मृगतृष्णा में जल नहीं है आकाश में बाग़ नहीं है और जगत का सर्व व्यवहार दिखलाई पड़ता है आप किस प्रकार कहते हो कि उत्पत्ति नहीं है ॥

तब गुरु ने दूसरी बार शिष्य को विवर्तवाद का उपदेश किया कि जैसे रस्सी में सर्प व सीपी में रूपा

कि भ्रम करके रस्सी में सर्प जान पड़ता है काटने
के डर से कोई पास नहीं जाता है और सीपी चांदी
समझता है जब भ्रम दूर होजाता है केवल सीपी
व रस्सी रहजाती है रूपा व सर्प जाता रहता है
तैसे जगत भ्रम करके ब्रह्म में प्रतीत होता है-
केवल एक ब्रह्म पूर्ण है इसको विवर्तवाद कहते
हैं कि जो भ्रम से जानपड़े व वास्तव में कुछ न हो
यह उपदेश मध्यम अधिकारी के लिये है ॥

फिर शिष्य को शंका हुई-कि रस्सी के सर्प और
सीपी की चांदी से कोई कार्य नहीं होता और जगत
से सब काम प्रत्यक्ष सिद्ध होता है आप कैसे कह
ते हो कि भ्रममात्र है तब तीसरी बार गुरु ने शिष्य
को आरंभवाद व आभासवाद का उपदेश किया
कि जैसे गहना में सोना व लोहा में हथियार व
तांबा में बर्तन कि गहना अलग अलग सब जगह
पहना जाता है और हथियारों से भिन्न सब वस्तु
काटी जाती है व बर्तन से सब काम अलग अलग
लिया जाता है गहना और हथियार व बर्तन कहने
मात्र हैं सोना व लोहा व तांबा के सिवाय और
कुछ नहीं है तैसे ब्रह्म में जगत है कि सब काम

अलग अलग सिद्ध होता है सिवाय ब्रह्मके कुछ नहीं है अज्ञान करके दूसरी वस्तु जान पड़ती है अज्ञान और भ्रम का नाश होजाना इसी का नाम मुक्ति है इसको आभासवाद कहते हैं कि जो मुख्य वस्तु है उसका अज्ञान से दूसरा नाम रक्खा जाय यह उपदेश निकृष्टोंकेलिये है जिसको कुछ समझ नहो इसलिये आगे और उपदेश नहींहै ॥

श्लोक शिवगीता

मोक्षस्य नहि वासोस्ति नग्रामांतरमेववा
अज्ञान हृदय ग्रंथि नाशो मोक्षइतिस्मृतः २

टीका निश्चय करके मोक्ष रूपकी कहीं ब्रह्मलोक आदिकों में बस्ती नहीं है कि वहां जाकर बसते हों और मोक्ष का कोई गांव देसावर नहींहै जहां से मोक्ष मोल लियाजाय हृदय से अज्ञान ग्रंथी का नाश होना यही मोक्षहै ॥

सिद्धान्त यह कि मोक्षका कोई गांव व बस्ती नहींहै जहां मोक्ष होकर बसते हों वा वहां से मोक्ष मोल लियाजाय हृदय से अज्ञान का नाश होना यही मोक्ष है मुक्ति आनंद स्वरूप है व भ्रम जोहै यही दुःखका मूल है ॥

दोहा

मुक्ती आनंद स्वरूप है भरम दुःख का मूल
भरम मुक्ति में है नहीं निश्चै कर अस्थूल।
इक इक सर्व सिद्धान्त का ज्ञानकंथ के माह
काव्य कोश व्याकरण से सब विरोध इस माह
जिज्ञासू को सुखदाई है ज्ञानकंथ का अर्थ
कंथा ज्ञान को धारकर मुक्ति में सामर्थ ॥

इति ज्ञानकंथायां जगत अत्यंताभाव मुक्ते आनंद स्वरूप निर्णयो नाम षष्ट प्रकरणम् समाप्तं

हरिॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

कर्म निर्णय प्रकर्ण ७

शिष्यप्रश्न

दोहा

साधन बुद्धी शुद्ध की कहा कर्म को जो
निर्णय करि के सब कहो निश्चै होवेसो

टीका हे गुरु दयालु जो साधन शुद्ध बु-
द्धि का आपने कर्म को कहा है सो कृपा करके तिस
कर्म को निर्णय करके कहिये जिसमें उनके स्वरूप
का निश्चय होजावै

गुरु उत्तर। दोहा।

नित्य निमित्तक प्रायश्चित्त उपासना काम निषिद्ध
कर्म षट् यह जानियो एकाग्र करके बुद्ध।
संध्यावंदन आदि ले करे नेम करि नित्त।
नित्यकर्म सो कहत हैं निश्चै जानो मित्त।
जातिष्टोम अरु श्राद्ध को करे निमित्त कर जो
निमित्त कर्म तेहि कहत हैं निश्चै जानो सो ॥
कृच्छ चांद्रायण व्रत जो करे पाप को नाश

प्रायश्चित्त तिसको कहैं निश्चै कर विश्वास
ईश्वर की आराधना करै रात दिन जो ।
उपासना तिसको कहत हैं निश्चै जानोसो
अश्वमेधको आदिले साधन स्वर्गकाजो
काम कर्म सो कहतहै निश्चै जानो सो ।
ब्राह्मन हनन और सुरापान और प्रमादजोहोय
साधनयहहै नर्कका निषिद्ध जानियो सोय ।
काम निषिद्ध को छोड़कर करै कर्म कोजो
सर्वइच्छासे रहितहोय शुद्धबुद्धभयाहै सो

टीका हे शिष्य कर्म षट - छहैं तिस षट कर्म - छ कर्मों के नाम यह हैं सो बुद्धिको एकाग्र करके श्रवण करो - १ नि[illegible] - २ निमित्त - ३ प्रायश्चित्त - ४ उपासना - ५ काम - ६ निषिद्ध - संध्या बंदन से आदि लेकर - शौच - स्नान - पूजा - जप - होम - बल - वैश्व - जो नियम कर्म करके नित्य किया करै उसको नित्यकर्म कहतेहैं - ज्योतिष्टोम और श्राद्धनांदीमुख आदि जो किसी निमित्त करके करै उसको निमित्तकर्म कहते हैं दूसरे पितृ और देवता के निमित्त करके जो कर्म किया जाता है वहभी नैमित्त कर्म है ज्योतिष्टोम उसको कहतेहैं जो

पुत्रोत्पत्ति के निमित्त करके यज्ञादिक कर्म किया जाय - कृच्छ्र व चांद्रायण व्रत जो है जिससे पापका नाश होजाता है तिसको प्रायश्चित्त कर्म कहते हैं- पूर्णमासी से पूर्णमासी तक कृच्छ्र और अमावस से अमावस तक चांद्रायण व्रत है - ईश्वर की आराधना - पूजा पाठ अर्चन और सेवा देवताकी जो रात दिन करता है तिसको उपासना कहते हैं - अश्वमेध यज्ञ से आदि लेकरके कर्म जो साधन स्वर्गकी प्राप्ति का है तिसको काम्यकर्म कहते हैं - ब्राह्मण हनन - ब्राह्मण को दुख देना व जीव से मारना और सुरापान मदिरा पीना - मांस खाना - और जितने प्रमाद हैं यह साधन नर्क के हैं तिनको निषिद्ध कर्म कहते हैं शास्त्रके आज्ञाको जैसा शास्त्र में लिखा है उसको छोड़ कर जो कर्म करता है सो प्रमाद है ॥

काम्य कर्म और निषिद्ध कर्म इन दोनों को छोड़ कर जो कोई इच्छा से रहित होकर निष्काम कर्म करता है वह मनुष्य शुद्ध बुद्धि होता है ॥

दोहा

भागक्षेत्रमें तीर्थवर हंस प्रतापन नाम
गुफा सहित सोहत कुटी दायक निज विश्राम

तिसके भीतर आवसे गंगागिरि एक सन्त
कंथाज्ञान की न्यूनता पूरण करी भगवन्त
जागृत स्थूल भोगको विश्वभोगता जान
स्वप्नसूक्षमभोगको तेजसभोगे मान
सुषुप्ति आनंद भोगको प्राज्ञभोगता नित्त
आत्मासाक्षी सर्व का निश्चै मानो मित्त

श्रुति - मांडूक्य

स्थूलभुक् वैश्वानरो। प्रविविक्तभुक्तैज
सो। आनन्दभुक् चैतो मुख्य प्राज्ञ। इत्या
दि श्रुतेः ॥१॥

टीका प्रश्न

हे गुरु भोक्ता कौनहै आत्माहै या कोई और
है दया करिके कहिये ॥

जागृत अवस्था में स्थूलभोगको विश्वजीव भो-
गता है- स्वप्नअवस्था में सूक्ष्म भोगको तैजसजीव
भोगता है- सुषुप्ति अवस्था में आनन्दभोग को
प्राज्ञजीव भोगता है और आत्मा जो अपना आपहै
सब का साक्षी है अभोक्ता है - स्थूलभुक् वैश्वा
नरो स्थूल का भोगने वाला विश्वहै-

परविविक्त भुक् तैजसो वासना मयी सूक्ष्म का

भोगने वाला तैजस है केवल वासना जिसका रूप है आनन्द भुक् चे मुख्य प्राज्ञ आनन्द को चेतो मुख्य- अज्ञान मुख्य करके प्राज्ञ भोग ता है ॥

सिद्धान्त यह कि स्थूल और सूक्ष्म तैजस जीव इन्द्रिय करके भोगते हैं और को प्राज्ञ जीव अज्ञान मुख्य करके भोगता है।

इति ज्ञानकथायां कर्मनिर्णय नाम सप्तम प्रकर्ण समाप्तम्

इति श्रीमत्परम [illegible] राज कांचार्य्यस्य किंकरे ण गंगागिरि [illegible] संग्रह क्रियता ज्ञानकथायां सम्पूर्णम्

दोहा

गणेश सहाय टीका करी अर्थ स्वामी से जान
छपाई सभी पंचान मिल निश्चे करो सुजान